रीतिकाल

विभिन्न धाराएँ तथा प्रवृत्तियाँ

(Ritikal: Various Streams and Trends)

शिप्रा सिंह

रीतिकाल : विभिन्न धाराएँ तथा प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल : विभिन्न धाराएँ तथा प्रवृत्तियाँ

(Ritikal: Various Streams and Trends)

शिप्रा सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5483-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्ति वैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्रय से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए, जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करने वाला काव्य साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में, जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं, जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित

किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है, जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्रा इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्य रचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओं वाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं, जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यत: मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगार काव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखिका

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. रीतिकाल **1**

परिचय 13

रीति शब्द की व्याख्या 16

नामकरण 16

समृद्धि और विलासिता का काल 17

श्रृंगारिक साहित्य 17

साहित्य का विकास 18

हिन्दी काव्य पर प्रभाव 19

आश्रयदाता की प्रशंसा 21

साहित्य के पक्ष 21

लेखन परम्परा 21

संस्कृत काव्यशास्त्र 22

रस सम्प्रदाय 24

ध्वनि के आचार्य 25

अन्य कवि 26

रीतिकालीन काव्य की भाषा 27

गोकुलनाथ 66

2. रीतिबद्ध काव्य **93**
रीतिबद्ध काव्य 96
रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ 101
रीतिबद्ध काव्य के प्रमुख कवि 109
निष्कर्ष 111
3. रीति संप्रदाय **113**
4. रीतिबद्ध काव्यधारा **116**
5. रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ **119**
6. रीतिकाल के कवि **131**
घनानन्द 131
जीवन परिचय 131
रचनाएँ 133
काव्यगत विशेषताएँ 133
कलापक्ष 134
छंद-विधान 134
7. बिहारी **137**
जीवन परिचय 137
टीकाएँ 140
काव्यगत विशेषताएँ 141
8. भूषण **145**
जीवन परिचय 145
रचनाएँ 146
भूषण की राष्ट्रीय चेतना 147
महापुरुषों के प्रति श्रद्धा 148
9. भिखारीदास **152**
काव्यांगों का निरूपण 154
भिखारी दास का आचार्यत्व 154
10. पद्माकर **157**
पद्माकर 157
जन्म और कुल-परिचय 157
ग्रन्थ-रचना 158

काव्य-सौंदर्य 158
निधन 159
जन्म-बचपन 159
व्यावहारिक बुद्धि 160
राज्याश्रय 160
निजामुद्दीन औलिया 162

1

रीतिकाल

रीतिकाल (1658-1857 ई.) हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल कहलाता है। इस काल के काव्य की प्रमुख धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। सजीव-शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुत: ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था या किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णत: हिन्दी में उतारा था।

साहित्य के इतिहास का काल विभाजन प्राय: समाज के इतिहास के काल विभाजन के आधार पर ही होता है। इसमें कभी-कभी विडंबनापूर्ण स्थितियाँ भी होती हैं, जो स्वाभाविक है उसकी चर्चा बाद में और जो विडंबना है उसकी चर्चा पहले। हिंदी साहित्य में एक काल आदिकाल है। आदिकाल कहने से समाज के इतिहास के प्रसंग में ऐसा अर्थ निकलता है कि जैसे यह तब का काल होगा जब हम लोग यानी भारत का समाज जंगलों में रहता होगा।

ऐसा नहीं है। यहाँ आदिकाल शुद्ध साहित्य से जुड़ा हुआ आदिकाल है। लेकिन हिंदी साहित्य का जो मध्यकाल है वह भारतीय समाज का भी मध्यकाल है। मतलब, मध्यकाल, जो हिंदी साहित्य का है उसके दो हिस्से हैं। पहला हिस्सा भक्तिकाल का है और दूसरा हिस्सा रीतिकाल का है। समाज के इतिहास के हिसाब से देखिए, हिंदी वालों के लिए मैं कह रहा हूँ देश भर के नहीं, तो एक तरह से जो भक्तिकाल का साहित्य है वह लगभग विद्यापति से शुरू होता है और यह बहुत लोगों को भ्रम है न जानने के कारण कि भक्ति कविता एक तरह से मुगल काल के साथ खत्म हो गई। ऐसा नहीं है।

वैसे स्वयं मुगल काल भी उन्नीसवीं सदी तक आता है। आप लोगों में से सबको यह तो मालूम ही होगा कि अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर थे, 1857 ई. के विद्रोह के समय जिनको अंग्रेजों ने गिरफ्तार किया, उनके सारे परिवार को मार डाला और स्वयं बहादुर शाह जफर को रंगून भेज दिया। यह ऐसा प्रसंग है, जिसको याद करते ही थोड़ी भी देश के प्रति प्रेम-भक्ति का भाव होगा तो खून खौलने लगता है। हम जब इस समय आपसे बात कर रहे हैं। उस समय उसी देश का प्रधानमंत्री हमारे देश के महान नेताओं से वार्ता के लिए आया हुआ है। ब्रिटेन का प्रधानमंत्री आया हुआ है। खैर, मैं जो मूल बात आपसे कह रहा था वह यह कि रामचंद्र शुक्ल ने एक बात लिखी है और ठीक लिखी है, उन्होंने कहा है कि हिंदी साहित्य की एक विशेषता यह है कि इसमें साहित्य की जो एक परंपरा शुरू हो जाती है वह कभी मरती नहीं है। पर नामकरण तो प्रधानता के आधार पर होता है कि जो प्रवृत्ति प्रधान होती है उसके आधार पर उस काल का नाम रख दिया जाता है। जाहिर है कि भक्तिकाल विद्यापति से ले कर और लगभग समझिए कि मुगल काल के मध्य तक, शाहजहाँ तक, भक्तिकाल के सारे बड़े कवि समाप्त हो चुके थे पर भक्ति कविता हिंदी साहित्य के रीतिकाल में भी मौजूद थी और उन्नीसवीं सदी तक आती है।

अब भी हिंदी में कुछ कवि मिल जाएँगे आपको वृंदावन में, अयोध्या में जो उसी ढाँचे-खाके में कविता लिखते हैं। मेरे पास अभी कुछ दिन पहले आगरा विश्वविद्यालय से डी.लिट. का एक शोध-प्रबंध आया था, आज के किसी भक्त कवि की कविता का इतना बड़ा पोथा था, जाहिर है कि मैं न उस कवि को जानता था न उसकी कविता को जानता था इसलिए मैंने थीसिस लौटा दी कि मैं जिसको जानता नहीं उस पर लिखी हुई थीसिस का मूल्यांकन नहीं करूँगा। खैर, यह जो मध्यकाल है उसकी अनेक विशेषताएँ हैं। मैं उसकी विस्तार से बात

नहीं करूँगा, विस्तार से बात आपके सामने मैं थोड़ी देर में इसी के एक हिस्से रीतिकाल की करूँगा। वैसे ही आपका विश्वविद्यालय रीतिकाल का गढ़ माना जाता है। मुझे नहीं मालूम कि रीतिकाल की बाकी विशेषताएँ बाकी विश्वविद्यालय में हैं कि नहीं पर रीतिकालीन कविता को पढ़ने-पढ़ाने और उसी को कविता मानने की परंपरा नगेंद्र जी से शुरू होकर अब तक मौजूद है, उनके जो भी शिष्य और शिष्य के शिष्य हैं वे सब उसी रीतिकाल में ही घूमते हैं। इसलिए उस पर बात करना मुझे ठीक लगा और मैने वही विषय चुना है। पर व्यापक रूप से मध्यकाल, जिसमें भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों आते हैं, उसकी दो-एक विशेषताओं की चर्चा करके मैं रीतिकाल पर आऊँगा।

पहली विशेषता यह है, पता नहीं आप लोगों ने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि नहीं कि भक्तिकाल की और भक्ति काव्य की अखिल भारतीय स्तर पर पहली और बुनियादी विशेषता यह है कि प्रत्येक भक्त कवि अपनी मातृभाषा का कवि है। प्रत्येक भक्त कवि कह रहा हूँ, मुझे आज तक कोई अपवाद मिला नहीं है। एक तरह के अपवाद तो हैं, जो अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषा में भी कविता लिखते हैं। जैसे स्वयं विद्यापति। विद्यापति तीन भाषाओं में कविता लिखते थे, संस्कृत में, अवहट्ट या अपभ्रंश में और अपनी मातृभाषा मैथिली में। पर महाकवि किसके हैं, संस्कृत के महाकवि नहीं हैं, अपभ्रंश के भी महाकवि नहीं है, महाकवि वो मैथिली के ही हैं। उसी तरह तुलसीदास अवधी में कविता लिखते थे और ब्रजभाषा में भी, पर ब्रजभाषा के महाकवि वो नहीं हैं। ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास है। तुलसीदास अवधी के ही महाकवि हैं। इसलिए मैने कहा कि कुछ प्रतिभाशाली कवि अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषाओं में भी कविता लिखते हैं पर बुनियादी महत्त्व तो उनकी मातृभाषा वाली कविता का है।

दूसरी विशेषता मध्यकाल की यह है कि जो मातृभाषाओं में कविता लिखी गई तो संस्कृत के पंडितों और फारसी के मुल्लाओं ने इसका बहुत विरोध किया। पता नहीं आपको मालूम है कि नहीं, अपना देश दो चीजों के लिए बहुत प्रसिद्ध है, पहली बात तो यही है कि यहाँ अश्लीलता को रेशमी चादर से ढँक कर उसको शालीनता कहते हैं और संस्कृति भी। इस दिल्ली शहर में कैसे अश्लीलता को रेशमी चादर से ढँकते हैं इसका प्रमाण इस दिल्ली शहर में औरतों के साथ हुई एक हजार ज्यादतियाँ हैं। एक साथ दोनों काम करते हैं, मंत्र भी जपते हैं - 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवतारू ...' और स्त्रियों की पूजा करने के नाम

पर उनके साथ जो-जो करते हैं उनमें से अधिकांश तो कहने लायक नहीं है। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि अश्लीलता को शालीनता की रेशमी चादर में ढँक कर उसे संस्कृति कहते हैं। दूसरा क्या है, सच को छुपाना और झूठ को मुलम्मा लगा कर पेश करना, यह एक पुरानी आदत है। यह जो विरोध हुआ वह कितनी दूर तक गया, उसके दो प्रमाण मैं दूँगा, ज्यादे नहीं। पचासों मेरे पास हैं। मराठी के एक भक्त कवि थे, संतकवि ज्ञानदेव। उनकी प्रसिद्ध रचना है, ज्ञानेश्वरी। मराठी का महान काव्य माना जाता है उसे। असल में ज्ञानेश्वरी ओबी छंद में है। इस ओबी छंद का ईजाद किया था ज्ञानेश्वर ने। ओबी छंद इसके पहले मराठी में नहीं था, देश में भी नहीं था। उन्होंने इस छंद को गढ़ा। उन्होंने ओबी छंद में और मराठी भाषा में गीता का अनुवाद किया है और व्याख्या भी की है। उसके तीसरे अध्याय की सत्रहवीं ओबी में ज्ञानेश्वर ने एक ऐसी बात लिखी है, जिसे भारतीय समाज, संस्कृति और भाषाओं के इतिहास का सबसे क्रांतिकारी वाक्य मैं मानता हूँ। यह मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि वह गीता का अनुवाद है तो यह भी आप जानते ही हैं कि गीता अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद है। उस तीसरे अध्याय में अर्जुन कृष्ण से कहते हैं, ध्यान रखिए ज्ञानेश्वर के अर्जुन संस्कृत के अर्जुन नहीं, कि आप जो कुछ कह रहे हैं वह बहुत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन बहुत गूढ़ है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इसलिए इसको सरल मराठी में समझा कर कहिए। पहली बार एक मनुष्य ने, अर्जुन कुल मिलाकर एक मनुष्य ही तो थे, ईश्वर तो कृष्ण थे, ईश्वर से कहा कि मेरी भाषा बोलो। आप जिस भाषा में कह रहे हो वह बहुत मुश्किल है इनलिए मेरी भाषा बोलो। तो इसका परिणाम क्या हुआ जानते हैं? यह जो काम उन्होंने किया यानी कि संस्कृत से महत्त्वपूर्ण अपनी मातृभाषा को बनाया, परिणाम यह हुआ कि पंडितों ने इक्कीस वर्ष की आयु में ज्ञानेश्वर को जीवित समाधि लेने के लिए मजबूर किया। यह तो हत्या करना है और बुरी तरह हत्या करना है। हत्या तो एक मिनट में हो सकती है, पर जीवित समाधि में जो आदमी होगा वह तो दो-एक दिन में मरेगा।

उसी तरह से मराठी के संत तुकाराम के साथ हुआ। मराठी संत तुकाराम जाति के माली थे। ब्राह्मण तो थे नहीं। इनसे कहा गया कि ये माली-वाली को अधिकार नहीं है कि ज्ञान का उपदेश दे इसलिए अपना यह लिखा-पढ़ा फेंको। एक कवि अपनी बात कह रहा है, वह चाहे जुलाहा कवि कबीर हो या माली कवि तुकाराम, वह फेंक काहे दे। तो पंडितों ने एक चाल चली और कहा कि तुम इसको नदी में डुबो दो और ईश्वर की कृपा होगी तो यह ऊपर आ जाएगा,

नहीं तो हम मान लेंगे कि यह डूबने लायक थी। अब आपसे अलग से क्या यह बताने की जरूरत है कि ऋग्वेद से ले कर भगवत् गीता तक की किताबें नदी में डुबोई जाएँ तो सब डूब जाएँगी। कौन नहीं डूबेगी! उसमें तो स्वयं भगवान ही मौजूद हैं। वो भी डूब जाएँगे उसी में। यह चाल चली उन्होंने। कहा जाता है कि, बाकी तो कथा है, तुकाराम ने पंडितों के कहने पर फेंका – मुझे तो हमेशा लगता है कि पंडितों ने तुकाराम से जबर्दस्ती छीन कर नदी में फेंक दिया – लेकिन डूबा नहीं वह। जो भी हुआ, बाद में तुकाराम घर में रहने के बदले जंगलों में घूमने लगे और कभी घर लौटे ही नहीं। मेरा अपना अनुमान यह है कि उनको मार दिया जंगल में। मराठी में जानते हैं कथा क्या चलती है, फिल्म बनी है तुकाराम पर जो हर साल दिखायी जाती है, जिसमें दिखाया जाता है, सीधे स्वर्ग से विमान आया और तुकाराम को सशरीर स्वर्ग ले गया। जिन लोगों ने मारा वे सभी क्यों नहीं गए, स्वर्ग तो सब लोग जाना चाहते हैं। यह जो प्रवृत्ति है यह भी आपके यहाँ की ही प्रवृत्ति है।

मैं एक घटना आपको सुनाऊँ चलते-चलते। मैं जब कोई काम करता हूँ तो काफी गहरी खुदाई करता हूँ। जब मैंने ज्ञानेश्वरी पढ़ी और जब यह वाक्य, अर्जुन का कृष्ण से कथन, दिखाई पड़ा तो मुझे यह वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगा, अभी थोड़ी देर पहले आपसे मैंने कहा था कि मेरी जानकारी में भारतीय समाज में भाषाओं के इतिहास का सबसे क्रांतिकारी वाक्य है। मैंने इसका हिंदी अनुवाद खरीदा जो साहित्य अकादमी से छपा है और अंग्रेजी अनुवाद खरीदा जो भारतीय विद्या भवन, बंबई से छपा है। दोनों में दो काम एक साथ हुए हैं। दोनों अनुवाद करने वाले मराठी लोग हैं। दोनों की भूमिकाओं में ज्ञानेश्वर को लगभग ईश्वर जैसा दर्जा दिया गया है पर दोनों अनुवादों में यह वाक्य बदल दिया गया है कि 'सरल मराठी में समझा कर कहिए,। इसके बदले लिखा हुआ है कि 'सरल भाषा में समझा कर कहिए,। माने, संस्कृत से जो प्रेम है वह भारी पड़ा ज्ञानेश्वर से प्रेम पर। यह अपने यहाँ की जानी-पहचानी प्रवृत्ति है। पर ऐसी इतनी प्रवृत्तियाँ हैं कि मैं उसी पर ध्यान दूँ तो आज का भाषण उसी पर हो जाएगा। पर वह मैं नहीं करूँगा।

यह जो मध्यकाल है, उसका जो रीतिकाल है, उसके बारे में जो कहना है उसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। पहली बात तो यह कि हिंदी आलोचना में महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाद में रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल के विरोध में बहुत सारा लिखा और दृष्टिकोण बनाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी नवरत्न'

की समीक्षा लिखी थी। बाकी उनका छोड़ भी दीजिए, उसको देखिए तो उनका जो रीतिकाल विरोधी दृष्टिकोण है वह दिखाई देगा। यही काम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। ये दो हिंदी के इतने बड़े आलोचक थे कि बाद के लोगों ने उन्हीं की बातों को मिर्च-मसाला लगा कर कभी थोड़ा घटा कर कभी थोड़ा बढ़ा कर पेश किया। नया किसी ने लिखा हो, नगेंद्र जी समेत, ऐसा नहीं है। रामचंद्र शुक्ल का आरोप क्या था? पहला आरोप यह था कि इस कविता में श्रृंगारिकता बहुत है। यद्यपि आचार्य शुक्ल मन से स्वयं श्रृंगारिक व्यक्ति थे। एक महिला से प्रेम भी करते थे। इसलिए, ठाकुर का एक छंद उनको बहुत प्रिय था, मुझे लगता है उनके मन से मिलता होगा, बार बार उसको दुहराया है। मैं अपको सुना रहा हूँ–

वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेतु न मानति होइ हैं।
आवत जात घरी घरी मेरो सूरति तो पहिचानति होइ हैं।
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेह न मानति होइहैं।
आवत हैं नित मेरे लिए इतना तो विशेष के जानति होइ हैं।।

इसको आचार्य शुक्ल ने अपने चार लेखों में उद्धृत किया है, इतिहास के साथ। इससे उनकी मानसिकता का पता चलता है। लेकिन यही काम जब रीतिकाल के कवि कर रहे थे तो शुक्ल जी को पसंद नहीं था।

आचार्य शुक्ल को दो और बातें पसंद नहीं थीं। उनके नापसंद करने का आधार है, ऐसा नहीं कि उन्होंने निराधार कहा लेकिन जो है वही मैं कह रहा हूँ। एक बात उनको पसंद नहीं थी और यह रीतिकाल की कमजोरी है, नायिका-भेद का विस्तार। अपार है वह। सात बरस की बच्चियों से ले कर सत्तर बरस की बुढ़ियाओं तक सब नायिकाएँ हैं। अरे कोई स्त्री भी होगी। जो नायिका के अलावा हो। आचार्य शुक्ल को सबसे अधिक नाराजगी इसी बात से थी इसीलिए आचार्य शुक्ल ने बहुत कड़ा वाक्य रीतिकाल के बारे में लिखा है। लिखा है, रीतिकाल में कविता बँधी नालियों में बहने लगी। लेकिन इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि हिंदी के बाद के आलोचकों ने रीतिकाल की कविता को समग्रता में पढ़ने-समझने और मूल्यांकन करने के बदले रामचंद्र शुक्ल की बातों को दुहराना शुरू किया। अब कह गए हैं आचार्य शुक्ल, अरे आचार्य शुक्ल ने पढ़-वढ़ के कहा था। बाद के बहुत लोगों ने बिना पढ़े ही कहा, क्योंकि पढ़ते तो कुछ और ऐसा दिखाई देता जो मैं आपके सामने अभी रखने वाला हूँ।

रीतिकाल के बारे में मेरी पहली बात यह है कि अपने समय के समाज और इतिहास से जैसा संबंध रीतिकाल की कविता का है वैसा संबंध भक्तिकाल में भी नहीं है। प्रमाण क्या है? मैं कोई रीतिकाल का प्रेमी नहीं हूँ। अभी ठीक बताया गया कि मैने पूरी किताब लिखी है, 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्यश। मैं स्वयं भक्तिकाल का प्रेमी हूँ। पर जो जहाँ है उसके बारे में बात की जाएगी न, जो वास्तविकता है, सच्चाई है। देखिए, रीतिकाल के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं केशवदास। अपने समय और समाज के इतिहास से केशव दास की कविता का क्या संबंध है? केशवदास की दो रचनाएँ हैं, जो सीधे इतिहास से जुड़ी हुई हैं मित्रो! मैं बाकी रामचंद्रिका आदि की बात नहीं कर रहा हूँ। एक उनका प्रबंध काव्य है, 'वीर सिंह देव चरित'। मैं दावे के साथ आपसे कह रहा हूँ कि रीतिकाल के बहुत सारे प्रेमियों ने इसे देखा ही नहीं है, बस नाम गिना देंगे। क्या है उसमें, उसमें मध्यकाल के इतिहास की जटिल समस्याएँ हैं। मुगल काल के इतिहास की खास तौर से। आप में से जो इतिहास के छात्र होंगे, उनको यह मालूम होगा कि अकबर के समय से और उनके राज्य-काल से संबंधित दो बड़ी घटनाएँ हुई। पहली घटना यह हुई कि उनके पुत्र सलीम ने, जो बाद में जहाँगीर बना, विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह की घटना श्वीर सिंह देव चरित' में है। उसी विद्रोह का एक और नतीजा हुआ कि सलीम ने वीर सिंह, जो ओरछा का राजा था - बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली, की मदद से अबुल फजल की हत्या करवाई। यह सब वीर सिंह देव चरित में है। आप बताइए, हमारा हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है भक्तिकाल, केशवदास और तुलसीदास बहुत दूर तक समकालीन थे, मतलब दोनों अकबर के जमाने में जीवित थे, भक्तिकाल के किस कवि ने मुगल शासन के बारे में लिखा है। किस कवि ने? हमारे जो परम आदरणीय बाबा तुलसीदास हैं, उन्होंने तो यह घोषित कर दिया - कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछिताना। यानि, अपने समय के किसी मनुष्य की कविता में चर्चा करना सरस्वती का अपमान है, तो राम का गुणगान करेंगे। सारा भक्तिकाव्य परलोकवाद की चिंता से लिखा गया है। सारा रीतिकाल अपने समय और अपने समाज की चिंता से लिखा गया है। उसमें कोई परलोकवाद नहीं है। और जो परलोकवादी हैं उनके बारे में रीतिकाल के ही एक कवि ने कहा कि 'राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है', वास्तविक भक्ति नहीं है, बहाना है वह। कहना तो है किसी स्त्री और पुरुष के बारे में कुछ, तो डर लगता है कि ज्यादा कहेंगे तो पिटाई-विटाई होने लगेगी। परसाई जी ने एक व्यंग्य

लिखा था कि कविता में सर्वनामों का प्रयोग क्यों होता है। अधिकांश कविताएँ 'वह' में लिखी जाती हैं। परसाई जी ने कहा कि वह में न लिखा जाय, संज्ञा में नाम ले कर लिखा जाय तो कोई चप्पल ले कर पहुँच जाएगी न घर पर! इसलिए सर्वनाम ही बचाता है। वही हाल है, अपने समय और समाज की चिंता नहीं है। खैर, हिंदी में केवल एक आलोचक ने, आप लोगों में जो छात्र हैं उनकी मदद के लिए कह रहा हूँ, केशवदास के इस काव्य के ऐतिहासिक महत्त्व पर विचार किया है। मिल जाए किताब कहीं तो पढ़िए। किताब मैं ले कर आया हूँ आपको दिखाने के लिए। यह किताब है चंद्रबली पांडेय की 'केशव दास' नाम से। कोई हिंदी का आलोचक इसका नाम नहीं लेता। जानते भी नहीं हैं लोग। उसके बाद केशवदास की दूसरी किताब है, यह थोड़ी छोटी है, 'जहाँगीर जस चंद्रिकाश। मुझे लगता है कि इसके बारे में बिना बताए भी आप सीधे समझ जाएँगे कि सीधे मुगल इतिहास से जुड़ी है। मैं केशवदास के बारे में बहुत कुछ सोच कर आया था, मेरे पास नोट्स हैं, वह भी आपसे कहना चाहता था पर अब समय नहीं है। दूसरी एकाध बातें और कहूँगा।

केशवदास ने इसी 'वीर सिंह देव चरित' में राजनीति की विस्तार से चर्चा की है। रूपक में। यानी, केशवदास एक राजनीतिक कवि भी हैं। केशवदास ने एक ऐसे शब्द का उपयोग अपनी कविता में किया है, जिसका उपयोग आज के कवि करते हैं, 'जनपद'। मैंने भक्ति काव्य बहुत पढ़ा है, लेकिन मेरी जानकारी में किसी ने जनपद शब्द का उपयोग किया हो, मुझे नहीं मालूम। उसका संदर्भ ले कर आया हूँ आपके सामने लेकिन पढ़ूँगा नहीं। उसी 'वीर सिंह देव चरित' में। जनपद एकदम आधुनिक शब्द है, कोई नहीं जानता कि यह वहीं से आया है। आप लोगों को मालूम है कि आजकल जिला को या सब-डिवीजन को जनपद भी कहा जाता है। जनपद वैसे बहुत पुराना शब्द है। हिंदी के एक कवि हैं त्रिलोचन, उनकी कविता की किताब ही है, 'उस जनपद का कवि हूँ, जो भूखा दूखा है!' इसलिए केशवदास पर ठीक से पुनर्विचार करने की जरूरत है। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि, उनकी राजनीतिक चेतना पर नए सिरे से काम करने की जरूरत है पर उसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी। आजकल लड़के-लड़कियाँ रिसर्च के नाम पर यात्र कहाँ से कहाँ तक करते हैं, 'एक होस्टल से दूसरे होस्टल तकश। माने, लड़के लड़कियों के होस्टल तक और लड़कियाँ लड़कों के होस्टल तक, बस। इससे 'वीर सिंह देव चरित' नहीं मिलेगा। 'वीर सिंह देव चरित' या चंद्रबली पांडेय की किताब किसी पुरानी लाइब्रेरी में मिलेगी।

दूसरे इस काल के कवि जिनका सीधे इतिहास से संबंध है वे हैं भूषण। भूषण औरंगजेब के जमाने के कवि हैं। भूषण शिवाजी के समय के कवि हैं। मेरा ख्याल है यह तो आप लोगों को मालूम होगा कि उनके तीन ग्रंथ हैं और तीनों का संबंध इतिहास से है। 'शिवराजभूषण', यह शिवाजी पर है। 'शिवाबावनी', यह भी शिवा जी पर है। और उस समय ही मध्य प्रदेश के एक बहादुर राजा थे छत्रसाल, उन पर उनकी एक काव्य पुस्तक है, 'छत्रसाल प्रकाश'। इसका सीधे संबंध इतिहास से है। इस बात को और भी कम लोग जानते हैं, मित्रो, थोड़ी देर में उसकी और चर्चा करूँगा , कि जिस समय औरंगजेब शासन कर रहा था (आप लोगों को मालूम है कि 1707 ई. में मरा वह) तब तक इस देश में अंग्रेज आ गए थे। रीतिकाल के चार कवि ऐसे हैं, जो अंग्रेजों के आने से चिंतित थे। रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के प्रसंग में लिखा है कि जीवन दूसरी ओर जा रहा था और कविता दूसरी ओर जा रही थी यानी कि छाती पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद चढ़ रहा था और कवि नायिका भेद की कविता कर रहे थे, यह पूरा सच नहीं है मित्रो। आप लोगों में से जिसको फुरसत हो, मैं किताब का नाम और छंद का नाम बता रहा हूँ भूषण के, उनकी किताब है 'शिवराज भूषण', उसमें छंद संख्या 116 और 261 इन दोनों में अंग्रेजों की चिंता है। 'शिवाबावनी' में छंद नं. 15 में अंग्रेजों की चिंता मौजूद है।

रीतिकाल के आखिरी महत्त्वपूर्ण कवि थे पद्माकर। मैं आपको पद्माकर का एक पूरा छंद पढ़ कर सुना रहा हूँ और तब आपको मालूम होगा कि रीतिकाल के कवि किस तरह से अंग्रेजों के आने से चिंतित थे। उस समय ग्वालियर का राजा था सिंधिया, बहुत प्रसिद्ध, माना जाता था बहादुर भी था, (माना जाता था इसलिए कह रहा हूँ कि मध्यकाल में बहादुर होने का एक ही अर्थ था कि कौन कहाँ से कितनी औरतों को भगा कर ले गया है, यही बहादुरी का एक प्रमाण था, वहाँ हर लड़ाई में यही होता था, मुझे नहीं मालूम सिंधिया ने यह भी किया था या नहीं, खैर) पद्माकर ने उनको एक चिट्ठी लिखी कविता में, मैं वही चिट्ठी या कविता पढ़ रहा हूँ (कविता से मालूम होगा कि पद्माकर को मालूम था कि अंग्रेज कहाँ-कहाँ अपनी जड़ जमा रहे हैं धीरे-धीरे)–

मीनागढ़, बंबई, सुमंद, मंदराज, बंग,
बंदर को बंद कर बंदर बसाओगे।

कहैं पद्माकर कसक कश्मीर हूँ को,
पिंजर सो घेरि के कलिंजर छुड़ाओगे।
बाका नृप दौलत अलीजा महराज कभौ,
साजि दल पकड़ फिरंगिन भगाओगे।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हू को झपटि कर,
कबहूँ लत्ता कलकत्ता की उड़ाओगे।।

यह ललकारा था उन्होंने। पर कवि ललकार ही सकते हैं न। आजकल बहुत सारे कवि मनमोहन सिंह को ललकार रहे हैं। पर उन पर किसी चीज का फर्क नहीं पड़ता। पता नहीं सिंधिया पर कुछ फर्क पड़ा कि नहीं, कुछ किया तो नहीं उन्होंने पर कवि ने अपना काम किया। मैं आपसे यह कह रहा था कि क्या साबित होता है इससे। और भी मेरे पास कविताएँ हैं, जो सीधे मुगल काल के इतिहास से जुड़ी हुई हैं। मैं उन सब को पढ़ नहीं रहा हूँ।

यह जो प्रवृत्ति है उससे लगता है कि रीतिकाल के कवि अपने समय के इतिहास से दो तरह से जुड़े थे, पहला तो यह कि सीधे उनका काल मुगल काल था उससे जुड़े हुए थे, उसका चित्रण-वर्णन अपने साहित्य में कर रहे थे और दूसरे आने वाली आफत अंग्रेजी राज की भी आपत्तियों-विपत्तियों को पहचानते थे, उसकी भी चर्चा कर रहे थे। घासीराम नाम के उस जमाने के एक कवि थे, आप लोगों में से कुछ को मालूम होगा कि उन्हीं के नाम पर विलासपुर में एक विश्वविद्यालय है, घासीराम ने लिखा सो पढ़ रहा हूँ आपसे, छंद का हिस्सा, उनकी किताब है - पथ्यापथ्य। 1834 ई. की। इसमें लिखा उन्होंने।

छाँड़ि के फिरंगिन को राज में सुधर्म काज
जहाँ पुण्य होत आज चलो उस देश को।

यानी, फिरंगियों के राज को छोड़ कर वहाँ चलो जहाँ पुण्य का काम होता हो, यहाँ तो सब पाप का काम होता है।

एक और कवि हैं रीतिकाल के, बहुत लोकप्रिय कवि हैं, आप लोग उन्हें जानते होंगे - दीनदयाल गिरि। बाबा दीनदयाल भी उनको कहा जाता है, उन्होंने लिखा है–

पराधीनता दुख महा, सुखी जगत स्वाघीन।
सुखी रमत सुक बन बिसय, कनक पींजरा दीन।

यह जो दोहा है, यह आधुनिककाल का लगता है। इस तरह की बात आज का कोई कवि कहेगा। जो तोता है, वह बन में तो सुख से रहता है, लेकिन सोने

के पिंजरे में भी रख दीजिए तो वह दीन हो जाता है। जंगल में स्वतंत्र रहता है। इससे ज्यादा चिंता मैथिलीशरण गुप्त के पास भी नहीं थी। स्वाधीनता के महत्त्व का गान कर रहे थे दीनदयाल गिरि। ऐसी कविता और ऐसे काल को रामचंद्र शुक्ल के कह देने से गरियाने का काम पिछले सौ साल से हो रहा है। ये कवि तो अपने समय के अंग्रेजी राज की पहचान कर रहे हैं, विरोध कर रहे हैं और रीतिकाल पर लिखी हुई एक किताब में भी क्या मजाल कि यह कहीं मिले। इसलिए मैं यह कह रहा हूँ। अभी दो एक उदाहरण और दूँगा। सीधे इतिहास से संबद्ध।

एक राजस्थान के कवि हैं, बूँदी में राज कवि थे, सूर्जबल मीसण नाम है। 'वंश भाष्कर' नाम का उनका महान ग्रंथ है। आठ खंडों में साहित्य अकादमी से छपा हुआ है। उसकी भाषा थोड़ी मुश्किल है, उसमें प्राकृत और राजस्थानी मिली-जुली है इसलिए प्रायः आज के छात्रों को समझ में नहीं आएगी। हम लोगों को ही कम ही समझ में आती है। मेहनत करके उसमें से कुछ निकालते हैं। उसमें एक तो बूँदी राजघराने का पूरा इतिहास है। दूसरा औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच जो बादशाहत के लिए सारी लड़ाई हुई, उसका इतिहास है उसमें। दारा शिकोह मध्यकाल के बड़े ही ट्रैजिक और महान पात्र थे, उनका संदर्भ रीतिकाल की अनेक कविताओं में है। भूषण की अनेक कविताओं में है। इसके साथ ही यह इतनी महत्त्वपूर्ण किताब है कि, एक इतिहासकार हैं कानूनगो, पूरा नाम उनका भूल रहा हू, कानूनगो अंत में आता है, वे दाराशिकोह के इतिहासकार हैं, यदुनाथ सरकार के शिष्य थे, ढाका में प्रोफेसर थे इतिहास के, उन्होंने दाराशिकोह पर एक किताब लिखी है और 'वंश भाष्कर' का उल्लेख किया है। हिंदी क्षेत्र में क्या है कि साहित्य और इतिहास के सारे संबंध खत्म हो गए हैं। इतिहास वाले साहित्य नहीं जानते। वीर सिंह देव चरित के संबंध में चंद्रबली पांडेय ने लिखा है कि अकबर के शासन के बारे में और सलीम के विद्रोह के बारे में बहुत सारी ऐसी बातें केशवदास ने लिखी हैं, जो बहुत सारे इतिहासकारों को नहीं मालूम। क्योंकि उनके समय के कवि थे। जानते थे, क्योंकि राज दरबारों में रहते थे। पुराने और जो महत्त्वपूर्ण इतिहासकार थे वे साहित्य भी पढ़ते थे। हिंदुस्तान में क्या है, साहित्य पढ़ते तो हैं, लेकिन केवल वही साहित्य पढ़ते हैं जिस समय का कोई इतिहास नहीं मालूम है। मान लीजिए कि आप वैदिक काल के समाज का इतिहास खोजने चलिए तो ऋगवेद के अलावा कुछ नहीं मिलेगा आपको। ऋगवेद ही पढ़कर काम करेंगे। रोमिला थापर भी यही करती हैं और

उनके विरोधी भी यही करते हैं। जब एक जगह आप साहित्य का उपयोग करते हैं तो बाद के दिनों में क्यों नहीं करते। मध्यकाल का इतिहास लिखने वालों को केशवदास को पढ़ना चाहिए। पर कौन समझाए उनको, जब हिंदी वाले नहीं पढ़ते तो इतिहासकार क्यों पढ़ें। इसलिए मित्रो, रीतिकाल पर नए ढंग से सोचने, समझने और विचार करने की जरूरत है। तब आपको मालूम होगा कि रीतिकाल की कविता के बारे में जो प्रायः धारणाएँ बनाई गई हैं उनमें से अनेक गलत हैं। इस कविता का एक गहरा ऐतिहासिक पक्ष है और एक गहरा राजनीतिक पक्ष भी है।

सन् 1700 ई. (1757 विक्रमी संवत) के आस-पास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषतः तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य कीश्रृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की श्रृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में श्रृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए।

राजा-महाराजा और आश्रयदाता अब केवल काव्यों को पढ़ और सुनकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि अब वह स्वयं काव्य रचना करना चाहते थे। इस समय पर कवियों ने आचार्य का कर्त्तव्य निभाया।

कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही जिसके फलस्वरूप इसमें चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्रा तो मिलती है, परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई।

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे। केशवदास (ओरछा), प्रताप सिंह (चरखारी), बिहारी (जयपुर, आमेर), मतिराम (बूँदी), भूषण (पन्ना), चिंतामणि (नागपुर), देव (पिहानी), भिखारीदास (प्रतापगढ़-अवध), रघुनाथ (काशी), बेनी (किशनगढ़), गंग (दिल्ली), टीकाराम (बड़ौदा), ग्वाल (पंजाब), चन्द्रशेखर बाजपेई (पटियाला), हरनाम (कपूरथला), कुलपति मिश्र

(जयपुर), नेवाज (पन्ना), सुरति मिश्र (दिल्ली), कवीन्द्र उदयनाथ (अमेठी), ऋषिनाथ (काशी), रतन कवि (श्रीनगर-गढ़वाल), बेनी बन्दीजन (अवध), बेनी प्रवीन (लखनऊ), ब्रह्मदत्त (काशी), ठाकुर बुन्देलखण्डी (जैतपुर), बोधा (पन्ना), गुमान मिश्र (पिहानी) आदि और अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है, जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई। केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य का शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि - ' केशवदास जी ने काव्य के सब अंगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। यह निःसन्देह है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल ऑकेशव ने ही किया। हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया ' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'

परिचय

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्रय से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए, जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्य साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं, जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है, जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्रा इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्य रचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओं वाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं, जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे।' पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं। 6

लौकिकता, शृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में - विशेषकर शृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में - सरस रचनाएँ इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएँ भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुएकृ केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

1. रीतिबद्ध कवि
2. रीतिमुक्त कवि
3. रीतिसिद्ध कवि

विद्वानों का यह भी मत हैं कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोर श्रृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

रीति शब्द की व्याख्या

'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है। संस्कृत साहित्य में रीति को 'काव्य की आत्मा' मानने वाला एक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति काव्य की आत्मा है और काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी रीति है, यह मान्यता इस सिद्धान्त की है। वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी रीतियाँ हैं। रीति का आधार गुण है। संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह धारणा हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गयी है। परन्तु रीति की काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ- 'ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो।' इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में सर्वप्रधान रही, वह काल 'रीतिकाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नामकरण

रीतिकाल 1700 से 1900 तक का काल है। मोटे तौर पर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन की समाप्ति और औरंगजेब के शासन के प्रारम्भ (1658 ई.) से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857 ई.) तक यह काल माना जाता है। इस युग में भक्तिकालीन काव्यधाराओं, जैसे सन्तकाव्य, प्रेमाख्यानकाव्य, रामभक्तिकाव्य, कृष्णभक्तिकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य आदि का विकास हुआ। परन्तु सबसे अधिक महत्त्व उसी रीतिकाव्य को प्राप्त हुआ, जो अलंकारों, रसों, नायिका-भेदों, शब्द-शक्तियों, ध्वनि-भेदों आदि के आधार पर लिखा गया। यह प्रतृत्ति इस युग की नवीन चेतना के रूप में जाग्रत हुई। इस कारण इसी के आधार पर यह नामकरण हुआ।

समृद्धि और विलासिता का काल

रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। नवाब, जागीरदार, मनसबदार, सामन्त-सभी का उद्देश्य विलासिता और समृद्धि का जीवन था। इस समृद्धि के जीवन के लिए साधन किसी भी प्रकार के क्यों न हों, समृद्धि का अर्जन ही सामर्थ्य की सार्थकता थी। ये उच्च वर्ग के लोग कला और कविता के संरक्षक थे। कुछ तो स्वयं कवि एवं कलाकार थे। इस प्रकार इस काव्य में ऐहिक जीवन के सुख-भोग पर बल दिया गया। यह जीवन की क्षणभंगुरता को भुलाकर नहीं, वरन् इसलिए कि इस क्षणभंगुर जीवन में जितने ही दिन सुख-भोग के बीत सकें, उतना ही अच्छा।

शृंगारिक साहित्य

सजाव-शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। उपासना के लिए जिन राम और कृष्ण का चरित्र भक्तिकाल में अत्यत्कृष्ट रूप में चित्रित हुआ, उनमें भी शृंगारिकता का आरोप कर श्रृंगारिक स्वरूप के उद्घाटन में प्रतिभा को लगाया गया। लोकैषणा का सीमित और भोग्य रूप इस काल के यथार्थवादी धरातल का संकेत करता है। पर यह यथार्थवाद सामाजिक क्रान्ति के बीज बोने वाले आधुनिक यथार्थवाद से भिन्न था। वह कला और कारीगरी का यथार्थ है, चिन्तना, ठेस, असन्तोष की चिनगारी बिखेरने वाला यथार्थ नहीं। इस काल की कलात्मक उपलब्धियों में एकरसता है, विविधता नहीं।

रचनाएँ

हिन्दी रीतिकाल के अन्तर्गत सामान्यत: दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं-

एक तो वे रचनाएँ, जिनमें मुख्यत: काव्यशास्त्र सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध किया गया है। स्पष्टत: हिन्दी कवियों का यह प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हो सका है। सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से इनका अधिक महत्त्व इस कारण नहीं है कि उनमें मौलिकता का अंश बहुत कम है। इस प्रकार के रीतिग्रन्थ अधिकतर संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुवाद हैं या फिर उनकी छाया पर आधारित है। काव्य-रस की दृष्टि से इनका स्तर ऊँचा नहीं है, क्योंकि इन आचार्य कवियों

का मुख्य ध्येय काव्य लक्षणों को वर्णित करना था, स्वतंत्र रूप से अनुभूतिपरक काव्य-सर्जन करना नहीं। फिर भी यह अवश्य है कि इन कवियों के उदाहरणों में से कुछ अंश शुद्ध काव्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जो काव्य लक्षणों को प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं लिखी गयीं। इस प्रकार के काव्य में भाषा, भाव तथा शैली-सभी का अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है। यह लक्षण मुक्त कविता ही वास्तव में रीतिकाल का प्राणतत्त्व है।

साहित्य का विकास

हिन्दी में रीति साहित्य के विकास के अनेक कारण हैं। एक कारण तो संस्कृत में इसकी विशाल परम्परा है। जिस समय भाषा-साहित्य का प्रारम्भ हुआ, उस समय भी संस्कृत में लक्षण या अलंकार-साहित्य की रचना चल रही थी। दूसरा कारण भाषा-कवियों को प्राप्त राज्याश्रय है। अकबर ने सबसे पहले हिन्दी कवियों को दरबार में आश्रय प्रदान किया और इस प्रकार हिन्दी काव्य को प्रोत्साहन मिला। आगे चलकर अन्य राजाओं ने भी इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया। राजपूताना तथा मध्यभारत की रियासतों, ओरछा, नागपुर आदि में भाषा-कवियों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ और आगे इन्हें हिन्दू और मुसलमान, दोनों के ही दरबार में प्रतिष्ठा मिली। इसके फलस्वरूप व्यापक रीति-साहित्य की रचना हुई। हिन्दी रीति-साहित्य के विकास का तीसरा कारण भी सामने आता है, जो है कवि और काव्य के स्वतंत्र रूप की प्रतिष्ठा। इस क्षेत्र में केशवदास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण उनको आगे के युग में दीर्घ काल तक इतना सम्मान प्राप्त हुआ।

रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। वस्तुतः ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। इस समय की राजनीतिक उथल-पुथल और सत्ता एवं वैभव की क्षणभंगुरता ने जीवन के दो अतिरेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी। एक ने जीवन के प्रति पूर्ण विरक्ति और त्याग का भाव जागरित किया, जबकि दूसरे ने पूर्ण भोग का दृष्टिकोण। ऐहिक काव्य को इस प्रकार का विलासपूर्ण चित्रण करने की प्रेरणा देने में राजनीतिक स्थिति का भी हाथ था।

सामंतवादी समाज

जहाँ तक सामाजिक पक्ष का सम्बन्ध है, मध्ययुग का समाज सामन्तवादी पद्धति पर आधारित था, जिसमें सम्राट शीर्ष पर था, जिसके बाद उसके अन्तर्गत राजा, अधिकारी और सामन्त थे, जिन्हें समाज में विशेष अधिकार और सम्मान प्राप्त थे। कवियों को अपने इन आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार या उन्हें प्रभावित करने वाला काव्य लिखना आवश्यक था, जिससे उनकी ऐहिक सन्तुष्टि होती थी और प्रतिभा का भी कम से कम एक क्षेत्र में विकास होता रहता था। मध्य काल के अमीर और सामन्त अत्यन्त विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। एक राजा, अमीर अथवा सामन्त के यहाँ दो, तीन, चार या इससे भी अधिक रानियाँ रहती थीं, जिनका काम अपने को अलंकृत करके पति को रिझाना और उसके प्रसन्न होने पर विलास-सामग्री की और वृद्धि करते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। नारी उनके हाथों में भोग-विलास का एक उपकरण मात्र बनकर रह गयी थी। मुगलकालीन भारतीय समाज के जीवन का एक पक्ष रीतिकाव्य के सौन्दर्य और विलासपूर्ण चित्रण को प्रेरणा देने वाला था। परन्तु इसका दूसरा पक्ष जन साधारण का है। नैतिकता की दृष्टि से जन साधारण का चरित्र इन विलासी दरबारियों की अपेक्षा कहीं अच्छा था, उस पर भक्तिकाल का प्रभाव था।

हिन्दी काव्य पर प्रभाव

मध्ययुगीन मुगल शासन के परिणामस्वरूप कई बातें जीवन में परिव्याप्त हुई दिखती हैं-

प्रथम तो एक केन्द्रीय सुदृढ़ शासक होने से देश के भीतर तुलनात्मक दृष्टि से शान्ति का वायुमण्डल बन गया।

द्वितीय इस शान्ति के अवसर पर जीवन में कला और संस्कृति को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। शिष्ट और सुसंस्कृत व्यवहार का सम्मान बढ़ा।

तीसरी बात यह है कि इसी शान्ति और समृद्ध के परिणामस्वरूप कला-प्रेम और विलासिता की भावना भी प्रखरता से जाग्रत हुई। जीवन में धर्म को, चाहे वह संकीर्ण अर्थ में ही क्यों न हो, प्रमुख स्थान मिला।

चौथी बात यह है कि भाषा-साहित्य को राजाओं और सामन्तों से संरक्षण और आश्रय मिला।

इन सभी बातों का रीतिकालीन हिन्दी काव्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

मत

रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यत: दो प्रकार के मत हैं–

1. एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है।
2. दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक काल की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता।
3. रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं–

अश्लीलता

रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब इन दोषों पर विचार करते हैं तो यह कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते। साथ ही इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी न किसी अंश में पाये जाते हैं। जहाँ तक अश्लीलता का प्रश्न है, तो यह भावना वस्तुत: युग सापेक्ष है। एक ही प्रकार का वस्तु रूप एक युग में अथवा एक स्थिति या अवस्था में अश्लील होता है और दूसरे में नहीं। कालिदास तथा अन्य संस्कृत कवियों की रचनाओं में शरीर के कुछ अवयवों का काव्य में वर्णन और उल्लेख उन दिनों अश्लील नहीं समझा जाता था। आज वह अश्लील समझा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अश्लील सापेक्ष पद है। जिन शब्दों (जैसे नीवी, नितम्ब, उरोज आदि) और जिन वर्णनों को आज अश्लील कहते हैं, उन सबकी परम्परा संस्कृत काव्य में गहराई के साथ रही है और बहुत कुछ वहाँ से उस शब्दावली का प्रवेश हिन्दी साहित्य में हुआ है।

समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता

दूसरा दोष प्राय: यह लगाया जाता है कि यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्ध काव्यों में भी हमें

व्यापक जीवन-दर्शन नहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। रीतिकाव्य वास्तव में यौवन का मादक, विलासपूर्ण काव्य है। फिर भी उसमें ऐसी उक्तियाँ तथा स्थितियाँ मिलती हैं, जो जीवन का अनुभव और कभी-कभी आदर्श बताती है। अत: आधुनिक दृष्टि से सामाजिक प्रगति को प्रेरणा प्रदान न करते हुए भी, इसमें जीवनोपयोगी तथ्यों का अभाव नहीं है।

आश्रयदाता की प्रशंसा

आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य-स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं, परन्तु ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा, कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राज्याश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ, कवि-प्रतिभा को प्रोत्साहित कर सके, साथ ही साथ दूर-दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अत: मध्ययुगीन राज्याश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, यह मानना पड़ेगा।

साहित्य के पक्ष

जैसा कि कहा गया है, रीतिकाल के अन्तर्गत विकसित होने वाले रीति-साहित्य के दो पक्ष हैं-शास्त्रीय और शास्त्रनिरपेक्ष। इन दोनों ही पक्षों के प्रति दृष्टिकोणों में अन्तर है। लगभग एक-सी परिस्थितियों में और कहीं-कहीं तो एक ही कवि द्वारा लिखे जाने पर भी इन दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों में अन्तर, उनके कवियों के दृष्टिकोण के कारण है। पहले वर्ग के कवि अपनी प्रवृत्ति में आचार्य अधिक थे। रीतिग्रन्थ उन्होंने या तो अपनी प्रेरणा से या अधिकांशत: अपने आश्रयदाता की इच्छा से लिखे थे। दूसरे वर्ग के कवि आचार्य रहे हों या न रहे हों, कवि वे अवश्य ही थे।

लेखन परम्परा

रीतिशास्त्र या रीतिकाव्य लिखने की परम्परा हिन्दी को संस्कृत से प्राप्त हुई। संस्कृत साहित्यशास्त्र के पाँच काव्यसिद्धान्तों में से प्राय: सभी का कुछ न कुछ प्रभाव हिन्दी रीतिशास्त्र पर पड़ा है। परन्तु जहाँ तक शास्त्रीय विवेचन का प्रश्न है, वह रीति और वक्रोक्ति-सिद्धान्तों के आधार पर अधिक नहीं लिखा

गया। अलंकार, रस और ध्वनि के ही लक्षण और उदाहरण देने का सामान्यत: प्रयत्न देखने को मिलता है। इन सिद्धान्तों का भी विवेचनात्मक निरूपण कम हुआ है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले कवियों के पूर्ववर्ती तथा समकालीन संस्कृत के ऐसे विद्वान् आचार्य थे, जिन्होंने काव्यशास्त्र के एक या अधिक अंगों को लेकर उनकी बड़ी ही विस्तृत और स्पष्ट व्याख्या की थी। ऐसी दशा में हिन्दी कवियों के लिए कुछ भी मौलिक कार्य करना कठिन था। फिर हिन्दी में लिखने वाले सभी काव्यशास्त्री संस्कृत साहित्य के पूर्ण विद्वान् नहीं थे। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के लिए ये ग्रन्थ निर्मित किये जा रहे थे- अर्थात् कवियों के आश्रयदातागण और सामान्य जनता-वे स्वयं इस प्रकार के विवेचन में रुचि नहीं रखते थे। वे मुख्यत: अपने मनोरंजनार्थ हिन्दी काव्य चाहते थे।

संस्कृत काव्यशास्त्र

हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था या किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णत: हिन्दी में उतारा था। प्राय: अपनी योजना के अनुकूल हिन्दी रीतिशास्त्र के लेखक ने अपने आधारभूत ग्रन्थ का पठित या श्रुत ज्ञान प्राप्त किया था। इस कार्य के लिए जिन संस्कृत ग्रन्थों का अधिकांश आधार लिया गया है, वे हैं-

भरत का 'नाट्यशास्त्र'
भामह का 'काव्यालंकार'
दण्डी का 'काव्यादर्श'
उद्भट का 'अलंकारसारसंग्रह'
केशव मिश्र का 'अलंकारशेखर'
अमरदेव का 'काव्यकल्पलताकृति'
जयदेव का 'चन्द्रालोक'
अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानन्द'
भानुदत्त के 'रसमंजरी', 'रसतरंगिणी'
विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण'

केशवदास का योगदान

हिन्दी के पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य में रीतिशास्त्र की परम्परा नहीं रही। इसको प्रेरणा देने वाला संस्कृत साहित्य ही है और इस परम्परा को हिन्दी में डालने वाले प्रमुख व्यक्ति आचार्य केशवदास (1550 से 1610 ई.) हैं। केशव के पूर्व भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिन्हें 'रीतिशास्त्र के ग्रन्थ' कह सकते हैं, परन्तु वे विशिष्ट रचनाएँ-सी ही है, प्रेरक प्रयास के रूप में उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। 'शिवसिंहसरोज' के आधार पर जिस ग्रन्थ का उल्लेख साहित्य के इतिहासकार सर्वप्रथम करते हैं, वह पुण्ड या पुष्य कवि है, जिसने 713 ई. के लगभग हिन्दी भाषा में संस्कृत के किसी अलंकारग्रन्थ का अनुवाद किया था, परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक किसी के देखने में नहीं आया। यदि वास्तव में उस समय का कोई इस प्रकार का लिखा ग्रन्थ मिल जाता है, तो वह न केवल रीतिशास्त्र का, वरन् हिन्दी का पहला ग्रन्थ ठहरता है। परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध की कोई प्रामाणिक सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है।

ऐसी अवस्था में रीतिशास्त्र पर प्राप्त सबसे पहला ग्रन्थ कृपाराम का 'हिततरंगिणी' ही है। इसकी रचना सन 1541 ई. में हुई। यह पाँच तरंगों में विभक्त है और प्रायः भरत के 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर है। इसके पश्चात् 1551 ई. का लिखा मोहनलाल मिश्र का शृंगारसागर' ग्रन्थ रस और नायिका-भेद का विवरण प्रस्तुत करता है तथा 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध कवि नन्ददास का लिखा 'रसमंजरी' ग्रन्थ भी इसी समय के आस-पास का है। करनेस बन्दीजन के ग्रन्थ भी केशव के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में ही रखे जा सकते हैं। परन्तु इन आचार्यों और ग्रन्थों में कोई भी विशेष महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखने वाला नहीं है। अतः कह सकते हैं कि रीतिशास्त्रीय परम्परा डालने वाले पहले आचार्य केशवदास ही हैं।

रस तथा अलंकार का प्रयोग

केशवदास तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों का काव्य, प्रवृत्ति की दृष्टि से तो रीतिकाल में आता है, परन्तु कालक्रम की दृष्टि से नहीं। काल विभाजन की दृष्टि से केशव (1550 से 1610 तक), सुन्दर तथा चिन्तामणि (रचनाकाल 1643 ई. के लगभग प्रारम्भ होता है) का स्थान भक्तिकाल के ही अन्तर्गत है। केशवदास के ग्रन्थों में 'कविप्रिया', और 'रसिकप्रिया' हैं। प्रबन्ध रचना की पद्धति पर लिखा गया 'रामचन्द्रिका' हिन्दी महाकाव्यों की पंक्ति में समादृत है। केशव मूलतः अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी थे। रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सुन्दर

तथा चिन्तामणि पूर्व-रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि हैं। चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना हिन्दी रीतिशास्त्र के उत्कृष्ट और बड़े आचार्यों में है। इनके प्राप्त ग्रन्थों में से 'पिंगल शृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु' का विशेष महत्त्व है। रीतिकाल के अन्तर्गत जिन कवियों की गणना की जाती है, वे प्रमुखत: संस्कृत के अलंकार, रस तथा ध्वनि सम्प्रदायों के अनुयायी थे। रीति और वक्रोक्ति सिद्धान्त के आधार पर हिन्दी में कुछ विशेष नहीं लिखा गया।

अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायियों में केशव के उपरान्त कालक्रम की दृष्टि से जसवन्त सिंह का नाम आता है। इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध रीतिग्रन्थ 'भाषाभूषण' रहा है। मतिराम (1617 ई.) की प्रवृत्ति रस की ओर अधिक है और लक्षणकार की अपेक्षा वे कवि अधिक हैं, फिर भी उनके 'अलंकारपंचाशिका' (1690 ई.) और 'ललितललाम' ग्रन्थ अलंकार पर हैं। भूषण (1613 से 1715 ई.) मतिराम के भाई थे। इन्हें आलंकारिक भी कहना चाहिए। तथापि इनकी उक्तियाँ वीर रस से पूर्ण हैं, फिर भी इनके प्रधान ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' (1653 ई.) में अलंकार के ही लक्षण उदाहरण हैं। भूषण महाराज शिवाजी के मित्र तथा उनके दरबारी कवि थे। इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में गोप, रसिक, सुमति, गोविन्द, दूलह (रचनाकाल 1750 से 1755 ई.), बैरीसाल, गोकुलनाथ तथा पद्माकर हैं। पद्माकर (1753 से 1832 ई.) को रीतिकाल का अन्तिम आलंकारिक कवि कहना चाहिए। कवि और रीति ग्रन्थकार, दोनों के ही रूप में पद्माकर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

रस सम्प्रदाय

रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत तोष तथा मतिराम की ख्याति विशेष है। तोष कवि का 1637 ई. का लिखा हुआ ग्रन्थ 'सुधानिधि' है। इसकी सरसता उदाहरणों में है। लक्षणों में कोई विवेचन सम्बन्धी नवीनता नहीं है। इसी प्रकार का ग्रन्थ मतिराम (1617 ई.) का 'रसराज' है। इसमेंशृंगार का नायक-नायिका भेदरूप में वर्णन है। मतिराम के लक्षण महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उदाहरण अवश्य बड़े ही सरस, कोमल तथा कल्पनायुक्त हैं। रस के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य आचार्य देव (1673-1768) का है। देव ने रस पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें अधिकतर शृंगार और नायिकाभेद की ही चर्चा है और एक ही प्रकार के भाव

अन्य ग्रन्थों में भी आये हैं। रस सम्बन्धी भावना प्रमुखतः 'भावविलास', 'भवानीविलास' और 'काव्यरसायन' में प्रकट हुई है। देव ने रस के दो भेद माने हैं-लौकिक और आलौकिक। देव के पश्चात् कालिदास, कृष्णभट्ट, कुमारमणि, श्रीपति, सोमनाथ, उदयनाभ, 'कवीन्द्र' दास आदि अनेक आचार्यों ने नायिकाभेद और रस पर लिखा है। परन्तु रस के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट नहीं हुए हैं। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों में रसलीन (अंगदर्पण, रसप्रबोध), दास, रूपसाहि, समनेस, उजियारे, यशवंत सिंह, रामसिंह ('रामनिवास', 1782 ई.) पद्माकर, रसिक, गोविन्द, बेनी प्रवीन तथा काव्य-सौन्दर्य, दोनों ही दृष्टियों से रामसिंह तथा ग्वाल का कार्य महत्त्वपूर्ण है।

ध्वनि के आचार्य

हिन्दी रीतिशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनि के सर्वप्रथम आचार्य कुलपति मिश्र हैं। कूर्मवंशी जयसिंह के लिए इन्होंने 'रसरहस्य' की रचना की। 'रसरहस्य' का रचनाकाल 1670 ई. है। कुलपति के विचार प्रौढ़ और प्रामाणिक हैं, पर कोई नवीन विचार देखने को नहीं मिलते। कुलपति के बाद देव ने ध्वनि पर लिखा है। इस काल के अन्य कवियों में सूरति मिश्र, कुमारमणि भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि तथा रामदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रीतिकाल के आचार्य कवियों में भिखारीदास (रचनाकाल 1728-1750 ई.) का नाम प्रथमपंक्तिय है। दास ने 'रससारांश', 'छन्दोर्णवपिंगल', 'काव्यनिर्णय' और 'श्रृंगारनिर्णय' ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर लिखे। काव्यशास्त्र की दृष्टि से सबसे प्रौढ़ और प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यनिर्णय' है, जिसमें ध्वनि का विवेचन और रस, अलंकार, गुण, दोष आदि का वर्णन है। हिन्दी रीतिकाव्य (लक्षणरहित काव्य) की परम्परा भक्तिकाल ही प्रारम्भ हो जाती है। कृपाराम, ब्रह्म (बीरबल), गंग, बलभद्र मिश्र, केशवदास, रहीम तथा मुबारक कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु उनकी काव्यपद्धति प्रायः रीतिप्रधान ही थी। उनके कृतित्त्व में प्रमुख ध्यान काव्य रचना का है और कोई यदि है तो गौण। रीतिकाव्य की प्रेरणा मुख्यतः आचार्य केशवदास और अकबर के दरबारी कवियों से ही प्राप्त हुई थी। इस परम्परा के साथ काव्य की एक स्वच्छन्द धारा का विकास हुआ, जिसके प्रवाह ने रीतिकाल में समस्त काव्य रसिकों को ओत-प्रोत कर दिया।

अन्य कवि

इस युग के रीति-कवियों में सबसे प्रथम सेनापति (1589 ई.) का नाम आता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कवित्तरत्नाकर' है। सेनापति की विशेष प्रसिद्धि उनके प्रकृति चित्रण तथा श्लेषचमत्कार के कारण है। 'कवित्तरत्नाकर' की रचना सन 1649 ई. में हुई। रीतिकाव्य की इस प्रथम महत्त्वपूर्ण रचना ने हिन्दी रीतिकाव्य को अतिशय प्रेरणा प्रदान की, इसमें सन्देह नहीं। बिहारीलाल (1603-1662 ई.) रीतिकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और उनकी यह ख्याति उनके अन्यतम ग्रन्थ 'सतसई' पर आधारित है, जिसे उन्होंने जयपुर के महाराज जयशाह के आदेश पर लिखा था। मुक्तक रचना होते हुए भी सतसई में सतसई का ध्यान अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि सब पर है और सभी के सुन्दर उदाहरण इसमें हैं।

रीति-परम्परा का पालन करते हुए और भाई होते हुए भी भूषण (1613-1715) की प्रकृति मतिराम के बिल्कुल विपरीत है। भूषण का काव्य ओजपूर्ण और वीर रस से ओत-प्रोत है। अत: रीतिकाव्य की शृंगारिक परम्परा का अनुगमन न करके ये वीर-परम्परा का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। वीर रस पर लिखने वाले तो रीतिकाल में और भी कवि हैं, पर रीति परम्परा पर वीर काव्य लिखने वाले भूषण अकेले हैं। शिवाजी की वीरता तथा अन्य गुणों से प्रेरित भूषण का 'शिवराजभूषण' अलंकारिक सौन्दर्य से भरपूर है। ललित शब्दावली में कोमल भावनाओं को व्यक्त करने वाले सुकुमार कल्पना के कवि मतिराम (1617 ई.) का काव्य रीतिकाव्य का प्रतिनिधित्व करता है। उनके ग्रन्थ 'ललितललाम', 'रसराज', 'अलंकारपंचाशिका' आदि में यद्यपि लक्षण दिये हुए हैं, फिर भी प्रधानता उदाहरण काव्य की है। अत: उनकी गणना रीतिशास्त्रियों में अधिक रीति-कवियों में होती है।

घनानन्द (रचनाकाल 1658 ई.) प्रसिद्ध प्रेमी, भक्त और कवि थे। उनका ध्यान अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, नायिका-भेद, रस आदि की ओर नहीं है, फिर भी इनकी रचना में आलंकारिक चमत्कार तथाशृंगार के संयोग और वियोग, दोनों ही पक्षों का इतना दक्षतापूर्ण वर्णन है कि रीति-परम्परा का प्रयास उससे स्पष्ट लक्षित होता है। घनानन्द का 'सुजानसागर' रीतिकाव्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों में एक है। देव (1673 ई.) को आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में सफलता प्राप्त हुई है। उनके कृतित्त्व में मौलिकता तथा कवित्वशक्ति का विलक्षण संयोग हुआ है।

भाव की पकड़, सूक्ष्म निरीक्षण, भाषा पर अधिकार, छन्द की गति, शब्दवर्णमैत्री, सरसता और उक्तिवैचित्र्य, सब मिलकर देव की रचना को स्मरणीय बनाते हैं। मानव स्वभाव का उन्हें बड़ा सूक्ष्म ज्ञान था। अपने ग्रन्थ 'भावविलास' की रचना देव ने 16 वर्ष की अवस्था में की थी।

भिखारीदास (रचनाकाल 1728-1750 ई.) आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में उत्कृष्ट हैं। जहाँ अपने ग्रन्थों में इन्होंने ध्वनि, अलंकार, रस, नायिका-भेद, छन्द आदि के लक्षण और विवेचन प्रस्तुत किये हैं, वहाँ उनके उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत कविता रीतिकाव्य का सुन्दर नमूना है। भिखारीदास के समकालीन रसलीन (सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी) का काव्य बड़ा ही चुटीला है और उक्तिचमत्कार के कारण इनके दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं-'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध'। बेनी प्रबीन (1753-1833 ई.) रीतिकाव्य के अन्तिम प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। इनके ग्रन्थ 'जगद्विनोद' तथा फुटकर छन्दों में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का सुन्दर परिचय मिलता है। पद्माकर में भावविवृति की विलक्षण शक्ति है। ग्वाल (रचनाकाल 1822-1861 ई.) भी पद्माकर की परिपाटी पर हैं। इनकी भाषा अधिक प्रांजल न होकर बाजारूपन लिये है। फिर भी इनके वर्णन सुन्दर हैं।

रीतिकालीन काव्य की भाषा

रीतिकालीन काव्य प्रायः ब्रजभाषा तथा उसके स्थानीय रूपों में लिखा गया। अधिकांश काव्य राजाश्रय में लिखा गया था। अधिक प्रवृत्ति अलंकृत काव्य लिखने की रही है। शृंगार के अन्तर्गत काम-वासना और नारी-सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, कहीं-कहीं भक्ति-भावना भी दिखाई दे जाती है। कुछ रचनाओं में वीर-भावना, नीति-उपदेश, लोक ज्ञान, व्यवहार आदि से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। इस युग के कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आध्यात्मिक न होकर ऐहिक अधिक है।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों का, जिन्होंने लक्षणग्रंथ के रूप में रचनाएँ की हैं, संक्षेप में वर्णन हो चुका है। अब यहाँ पर इस काल के भीतर होने वाले उन कवियों का उल्लेख होगा जिन्होंने रीतिग्रंथ न लिखकर दूसरे प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। ऐसे कवियों में कुछ ने तो प्रबंध काव्य लिखे हैं, कुछ ने नीति या भक्ति संबंधी पद्य और कुछ ने शृंगार रस की फुटकल कविताएँ लिखी हैं। ये पिछले वर्ग के कवि प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न हैं कि

इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है। अधिकांश में ये भी शृंगारी कवि हैं और इन्होंने भी शृंगाररस के फुटकल पद्य कहे हैं। रचनाशैली में किसी प्रकार का भेद नहीं है। ऐसे कवियों में घनानंद सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इस प्रकार के अच्छे कवियों की रचनाओं में प्राय: मार्मिक और मनोहर पद्यों की संख्या कुछ अधिक पाई जाती है। बात यह है कि इन्हें कोई बंधान नहीं था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी ये लिख गए। रीतिबद्ध ग्रंथ जो लिखने बैठते थे उन्हें प्रत्येक अलंकार या नायिका को उदाहृत करने के लिए पद्य लिखना आवश्यक था जिनमें सब प्रसंग उनकी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे। रसखान, घनानंद, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए हैं उनमें किसी ने लक्षणबद्ध रचना नहीं की है।

प्रबंधकाव्य की उन्नति इस काल में कुछ विशेष न हो पाई। लिखे तो अनेक कथा प्रबंध गए, पर उनमें से दो ही चार में कवित्त का यथेष्ट आकर्षण पाया जाता है। सबलसिंह का महाभारत, छत्रसिंह की विजय मुक्तावली, गुरु गोविंदसिंहजी का चंडीचरित्र, लाल कवि का छत्रप्रकाश, जोधराज का हम्मीररासो, गुमान मिश्र का नैषधचरित, सरयूराम का जैमिनीपुराण, सूदन का सुजान चरित्र, देवीदत्ता की वैतालपच्चीसी, हरनारायण की माधावानल कामकंदला, ब्रजवासी दास का ब्रजविलास, गोकुलनाथ आदि का महाभारत, मधूसूदनदास का रामाश्वमेधा, कृष्णदास की भाषा भागवत, नवलसिंह कृत भाषा सप्तशती, आल्हारामायण, आल्हाभारत, मूलढोला तथा चंद्रशेखर का हम्मीरहठ, श्रीधार का जंगनामा, पद्माकर का रामरसायन, ये इस काल के मुख्य कथानक काव्य हैं। इनमें से चंद्रशेखर के हम्मीरहठ, लालकवि के छत्रप्रकाश, जोधाराज के हम्मीररासो, सूदन के सुजानचरित्र और गोकुलनाथ आदि के महाभारत में ही काव्योपयुक्त रसात्मकता भिन्न भिन्न परिणाम में पाई जाती है। 'हम्मीररासो' कीरचना बहुत ही प्रशस्त है। 'रामाश्वमेधा' की रचना भी साहित्यिक है। 'ब्रजविलास' में यद्यपि काव्य के गुण अल्प हैं, पर उसका थोड़ाबहुत प्रचार कम पढ़ेलिखे कृष्णभक्तों में है।

कथात्मक प्रबंधों से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने में आती है, जिसे हम वर्णनात्मक प्रबंध कह सकते हैं। दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, मृगया, झूला, होलीवर्णन, जन्मोत्सववर्णन, मंगलवर्णन, रामकलेवा इत्यादि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। बड़े-बड़े प्रबंधकाव्यों के भीतर इस

प्रकार के वर्णनात्मक प्रसंग रहा करते हैं। काव्यपद्धति में जैसेशृंगाररस के क्षेत्र से 'नखशिख', 'षट्ऋतु' आदि लेकर स्वतंत्र पुस्तकें बनने लगीं वैसे ही कथात्मक महाकाव्यों के अंग भी निकालकर अलग पुस्तकें लिखी गईं। इनमें बड़े विस्तार के साथ वस्तु वर्णन चलता है। कभी-कभी तो इतने विस्तार के साथ कि परिमार्जित साहित्यिक रुचि के सर्वथा विरुद्ध हो जाता है। जहाँ कवि जी अपने वस्तु परिचय का भंडार खोलते हैं, जैसे बरात का वर्णन है तो घोड़ों की सैकड़ों जातियों के नाम, वस्त्रों का प्रसंग आया तो पचीसों प्रकार के कपड़ों के नाम और भोजन की बात आई तो, सैंकड़ों मिठाइयों, पकवानों, मेवों के नाम, वहाँ तो अच्छे अच्छे धीरों का धैर्य छूट जाता है।

चौथा वर्ग नीति के फुटकल पद्य कहने वालों का है। इनको हम कवि कहना ठीक नहीं समझते। इनके तथ्यकथन के ढंग में कभीकभी वाग्वैदग्ध्य रहता है पर केवल वाग्वैदग्ध्य के द्वारा काव्य की सृष्टि नहीं हो सकती। यह ठीक है कि कहीं कहीं ऐसे पद्य भी नीति की पुस्तकों में आ जाते हैं जिनमें कुछ मार्मिकता होती है, जो हृदय की अनुभूति से भी संबंध रखते हैं, पर उनकी संख्या बहुत ही अल्प होती है। अतः ऐसी रचना करने वालों को हम 'कवि' न कहकर 'सूक्तिकार' कहेंगे। रीतिकाल के भीतर वृंद, गिरिधर, घाघ और बैताल अच्छे सूक्तिकार हुए हैं।

पाँचवाँ वर्ग ज्ञानोपदेशकों का है, जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातों को पद्य में कहते हैं। ये कभी-कभी समझने के लिए उपमा, रूपक आदि का प्रयोग कर देते हैं, पर समझाने के लिए ही करते हैं, रसात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए नहीं। इनका उद्देश्य अधिकतर बोधवृत्ति जागृत करने का रहता है, मनोविकार उत्पन्न करने का नहीं। ऐसे ग्रंथकारों को हम केवल 'पद्यकार' कहेंगे। हाँ, इनमें जो भावुक और प्रतिभासम्पन्न हैं, जो अन्योक्ति आदि का सहारा लेकर भगवत्प्रेम, संसार के प्रति विरक्ति, करुणा आदि उत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं वे अवश्य ही कवि क्या, उच्च कोटि के कवि कहे जा सकते हैं।

छठा वर्ग कुछ भक्त कवियों का है, जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं।

इनके अतिरिक्त आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीर रस की फुटकल कविताएँ भी बराबर बनती रहीं, जिनमें युद्ध वीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। ऐसी कविताएँ थोड़ीबहुत तो रसग्रंथों आदि में मिलती हैं, कुछ अलंकारग्रंथों के उदाहरण रूप, जैसे, 'शिवराजभूषण' और

कुछ अलग पुस्तकाकार जैसे 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' इत्यादि। ऐसी पुस्तकों में सर्वप्रिय और प्रसिद्ध वे ही हो सकी हैं, जो या तो देवकाव्य के रूप में हुई हैं अथवा जिनके नायक कोई देशप्रसिद्ध वीर या जनता के श्रद्धाभाजन रहे हैं, जैसे, शिवाजी, छत्रसाल, महाराणा प्रताप आदि। जो पुस्तकें यों ही खुशामद के लिए आश्रित कवियों के रूढ़ि के अनुसार लिखी गई, जिनके नायकों के लिए जनता के हृदय में कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। बहुत-सी तो लुप्त हो गई। उनकी रचना में सच पूछिए तो कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया। उनके द्वारा कवियों को अर्थसिद्धि भर प्राप्त हुई, यश का लाभ न हुआ। यदि बिहारी ने जयसिंह की प्रशंसा में ही अपने सात सौ दोहे बनाए होते तो उनके हाथ केवल अशर्फियाँ ही लगी होतीं। संस्कृत और हिन्दी के न जाने कितने कवियों का प्रौढ़ साहित्यिक श्रम इस प्रकार लुप्त हो गया। काव्यक्षेत्र में यह एक शिक्षाप्रद घटना हुई है।

भक्तिकाल के समान रीतिकाल में भी थोड़ा बहुत गद्य इधर उधर दिखाई पड़ जाता है पर अधिकांश कच्चे रूप में। गोस्वामियों की लिखी 'वैष्णववार्ताओं' के समान कुछ पुस्तकों में ही पुष्ट ब्रजभाषा मिलती है। रही खड़ी बोली। वह पहले कुछ दिनों तक तो मुसलमानों के व्यवहार की भाषा समझी जाती रही। मुसलमानों के प्रसंग में उसका कभी कभी प्रयोग कवि लोग कर देते थे, जैसे, अफजल खान को जिन्होंने मैदान मारा (भूषण)। पर पीछे दिल्ली राजधानी होने से रीतिकाल के भीतर ही खड़ी बोली शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो गई थी और उसमें अच्छे गद्य ग्रंथ लिखे जाने लगे थे। संवत् 1798 में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाष योगवाशिष्ठ' बहुत ही परिमार्जित गद्य में लिखा। 1

इसी रीतिकाल के भीतर रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह ने हिन्दी का प्रथम नाटक (आनंदरघुनंदन) लिखा। इसके उपरांत गणेश कवि ने 'प्रद्युम्नविजय' नामक एक पद्यबद्ध नाटक लिखा जिसमें पात्रप्रवेश, विष्वंभक, प्रवेशक आदि रहने पर भी इतिवृत्तात्मक पद्य रखे जाने के कारण नाटक का प्रकृत स्वरूप न दिखाई पड़ा।

1. बनवारी ये संवत् 1690 और 1700 के बीच वर्तमान थे। इनका विशेष वृत्त ज्ञात नहीं। इन्होंने महाराज जसवंत सिंह के बड़े भाई अमरसिंह की वीरता की बड़ी प्रशंसा की है। यह इतिहास प्रसिद्ध बात है कि एक बार शाहजहाँ के दरबार में सलावत खाँ ने किसी बात पर अमरसिंह को गँवार कह दिया,

जिस पर उन्होंने चट तलवार खींचकर सलावत खाँ को वहीं मार डाला। इस घटना का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन इनके इन पद्यों में मिलता है।

धान्य अमर छिति छत्रपति, अमर तिहारो मान।
साहजहाँ की गोद में, हन्यो सलावत खान
उत गकार मुख ते कढ़ी, इतै कढ़ी जमधार।
श्वार' कहन पायो नहीं, भई कटारी पार
आनि कै सलावत खाँ जोर कै जनाई बात,
तोरि धार पंजर करेजे जाय करकी।
दिलीपति साहि को चलन चलिबे को भयो,
गाज्यो गजसिंह को, सुनी जो बात बर की
कहै बनवारी बादसाही के तखत पास,
फरकि-फरकि लोथ लोथिन सों अरकी।
कर की बड़ाई, कै बड़ाई बाहिबे की करौं,
बाढ़ की बड़ाई, कै बड़ाई जमधार की

बनवारी कवि की शृंगार रस की कविता भी बड़ी चमत्कारपूर्ण होती थी। यमक लाने का ध्यान इन्हें विशेष रहा करता था। एक उदाहरण लीजिए–

नेह बर साने तेरे नेह बरसाने देखि,
यह बरसाने बर मुरली बजावैंगे।
साजु लाल सारी, लाल करैं लालसा री,
देखिबे की लालसारी, लाल देखे सुख पावैंगे
तू ही उरबसी, उरबसी नाहि और तिय,
कोटि उरबसी तजि तोसों चित लावैंगे।
सजे बनवारी बनवारी तन आभरन,
गोरे तन वारी बनवारी आज आवैंगे

2. सबलसिंह चौहान इनके निवासस्थान का ठीक निश्चय नहीं। शिवसिंहजी ने यह लिखकर कि कोई इन्हें चन्दागढ़ का राजा और कोई सबलगढ़ का राजा बतलाते हैं, यह अनुमान किया है कि ये इटावा के किसी गाँव के जमींदार थे। सबलसिंहजीने औरंगजेब के दरबार में रहने वाले किसी राजा मित्रसेन के साथ अपना संबंध बताया है। इन्होंने सारे महाभारत की कथा दोहों चौपाइयों में लिखी है। इनका महाभारत बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसे इन्होंने संवत् 1718 और संवत् 1781 के बीच पूरा किया। इस ग्रंथके

अतिरिक्त इन्होंने 'ऋतु संहार का भाषानुवाद', 'रूपविलास' और एक पिंगलग्रंथ भी लिखा था पर वे प्रसिद्ध नहीं हुए। ये वास्तव में अपने महाभारत के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इसमें यद्यपि भाषा का लालित्य या काव्य की छटा नहीं है पर सीधी सादी भाषा में कथा अच्छी तरह समझाई गई है। रचना का ढंग नीचे के अवतरण से विदित होगा,

अभिमनु धाइ खड़ग परिहारे।
भूरिश्रवा बान दस छाँटे।
तीन बान सारथि उर मारे।
सारथि जूझि गिरे मैदाना।
यहि अंतर सेना सब धाई।
रथ को खैंचि कुँवर कर लीन्हें।
अभिमनु कोपि खंभ परहारे।
अर्जुनसुत इमि मार किय महाबीर परचंड।
रूप भयानक देखियत जिमि जम लीन्हेंदंड

3. वृंद, ये मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ़ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। संवत् 1761 में ये शायद कृष्णगढ़ नरेश के साथ औरंगजेब की फौज में ढाके तक गए थे। इनके वंशधर अब तक कृष्णगढ़ में वर्तमान हैं। इनकी 'वृंदसतसई' (संवत् 1761), जिसमें नीति के सात सौ दोहे हैं, बहुत प्रसिद्ध हैं। खोज में 'शृंगारशिक्षा' (संवत् 1748), और 'भावपंचाशिका' नाम की दो रससंबंधी पुस्तकें और मिली हैं, पर इनकी ख्याति अधिकतर सूक्तिकार के रूप में ही है। वृंदसतसई के कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं,

भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं
हितहू कौं कहिए न तेहि, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाए क्रोध

4. छत्रसिंह कायस्थ, ये बटेश्वर क्षेत्र के अटेर नामक गाँव के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके आश्रयदाता अमरावती के कोई कल्याणसिंह थे। इन्होंने 'विजयमुक्तावली' नाम की पुस्तक संवत् 1757 में लिखी जिसमें महाभारत की कथा एक स्वतंत्र प्रबंधकाव्य के रूप में कई छंदों में वर्णित है। पुस्तक में काव्य के गुण यथेष्ट परिमाण में हैं और

कहीं कहीं की कविता बड़ी ही ओजस्विनी है। कुछ उदाहरण लीजिए–

निरखत ही अभिमन्यु को, बिदुर डुलायो सीस।
रच्छा बालक की करौ, ह्वै कृपाल जगदीस
आपुन काँधौं युद्ध नहिं, धानुष दियो भुव डारि।
पापी बैठे गेह कत, पांडुपुत्र तुम चारि
पौरुष तजि लज्जा तजी, तजी सकल कुलकानि।
बालक रनहिं पठाय कै, आपु रहे सुख मानि
कवच कुंडल इंद्र लीने बाण कुंती लै गई।
भई बैरिनि मेदिनी चित कर्ण के चिंताभई

5. बैताल जाति के बंदीजन थे और राजा विक्रमसाहि की सभा में रहते थे। यदि ये विक्रम सिंह चरखारी वाले प्रसिद्ध विक्रमसाहि ही हैं, जिन्होंने 'विक्रम सतसई' आदि कई ग्रंथ लिखे हैं और जो खुमान, प्रताप कई कवियों के आश्रयदाता थे, तो बैताल का समय संवत् 1839 और 1886 के बीच मानना पड़ेगा। पर शिवसिंहसरोज में इनका जन्मकाल संवत् 1734 लिखा हुआ है। बैताल ने गिरिधर राय के समान नीति की कुंडलियों की रचना की हैं और प्रत्येक कुंडलियाँ विक्रम को संबोधन करके कही हैं। इन्होंने लौकिक व्यवहार संबंधी अनेक विषयों पर सीधे सादे पर जोरदार पद्य कहे हैं। गिरिधर राय के समान इन्होंने भी वाक्चातुर्य या उपमा रूपक आदि लाने का प्रयत्न नहीं किया है। बिल्कुल सीधी सादी बात ज्योंकी त्यों छंदोबद्ध कर दी गई है। फिर भी कथन के ढंग में अनूठापन है। एक कुंडलियाँ नीचे दी जाती है,

मरै बैल गरियार, मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्टू
बाम्हन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावै
अरु बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइए।
बैताल कहै विक्रम सुनौ, एते मरे न रोइए

6. आलम ये जाति के ब्राह्मण थे, पर शेख नाम की रँगरेजिन के प्रेम में फँसकर पीछे से मुसलमान हो गए और उसके साथ विवाह करके रहने लगे। आलम को शेख से जहान नामक एक पुत्र भी हुआ। ये औरंगजेब

के दूसरे बेटे मुअज्जम के आश्रय में रहते थे जो पीछे बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। अतः आलम का कविताकाल संवत् 1740, से संवत् 1760 तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'आलमकेलि' के नाम से निकला है। इस पुस्तक में आए पद्यों के अतिरिक्त इनके और बहुत से सुंदर और उत्कृष्ट पद्य ग्रंथों में संगृहीत मिलते हैं और लोगों के मुँह से सुने जाते हैं।

शेख रँगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी। आलम के साथ प्रेम होने की विचित्र कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आलम ने एक बार उसे पगड़ी रँगने को दी जिसकी खूँट में भूल से कागज का एक चिट बँधा चला गया। उस चिट में दोहे की यह आधी पंक्ति लिखी थी 'कनक छरीसी कामिनी काहे को कटि छीनश। शेख ने दोहा इस तरह पूरा करके 'कटि को कंचन कटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन', उस चिट को फिर ज्योंकी त्यों पगड़ी की खूँट में बाँधकर लौटा दिया। उसी दिन से आलम शेख के पूरे प्रेमी हो गए और अंत में उसके साथ विवाह भी कर लिया। शेख बहुत ही चतुर और हाजिरजवाब स्त्री थी। एक बार शाहजादा मुअज्जम ने हँसी में शेख से पूछा, 'क्या आलम की औरत आप ही हैं?' शेख ने चट उत्तर दिया कि 'हाँ, जहाँपनाह जहान की माँ मैं ही हूँ।' श्आलमकेलि' में बहुत से कवित्त शेख के रचे हुए हैं। आलम के कवित्त सवैयों में भी बहुत-सी रचना शेख की मानी जाती है। जैसे नीचे लिखे कवित्त में चौथा चरण शेख का बनाया कहा जाता है,

प्रेमरंग-पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोबन की जोति जगी जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकिझुकि झपि उघरत हैं
आलम सो नवल निकाई इन नैनन की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं।
चाहत हैं उड़िबे को, देखत मयंकमुख,
जानत हैं रैनि तातें ताहि में रहत हैं।

आलम रीतिबद्ध रचना करने वाले कवि नहीं थे। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदयतत्त्व की प्रधानता है। 'प्रेम की पीर' या 'इश्क का दर्द' इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक कही हैं। शब्द

वैचित्रय, अनुप्रास आदि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पाई जाती। श्रृंगार रस की ऐसी उन्मादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुननेवाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग में ही सम्भव है। रेखता या उर्दू भाषा में भी इन्होंने कवित्त कहे हैं। भाषा भी इस कवि की परिमार्जित और सुव्यवस्थित है पर उसमें कहींकहीं 'कीन, दीन, जीन' आदि अवधी या पूरबी हिन्दी के प्रयोग भी मिलते हैं। कहीं-कहीं फारसी की शैली के रसबाधकभाव भी इनमें मिलते हैं। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना 'रसखान' और 'घनानंद' की कोटि में ही होनी चाहिए। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं,

जा थल कीने बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्योकरैं।
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं
कैधौं मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधौं उत दादुर न बोलत हैं, एदई।
कैधौं पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधौं बगपाँति उत अंतगति ह्वै गई?
आलम कहै, आली! अजहूँ न आए प्यारे,
कैधौं उत रीत विपरीत बिधि ने ठई?
मदन महीप की दुहाई फिरिबे ते रही,
जूझि गये मेघ, कैधौं बीजुरी सती भई?
रात कें उनींदे अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सुहात हैं।
तीखी तीखी कोरनि करोरि लेत काढ़े जीउ,
केते भए घायल औ केते तलफात हैं
ज्यों ज्यों लै सलिल चख 'सेख' धोवै बार बार,
त्यों त्यों बल बुंदन के बार झुकि जात हैं।
कैबर के भाले, कैधौं नाहर नहनवाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी तें अघात हैं?
दाने की न पानी की, न आवै सुधा खाने की,
याँ गली महबूब की अराम खुसखाना है।

रोज ही से है, जो राजी यार की रजाय बीच,
नाज की नजर तेज तीर का निशाना है
सूरत चिराग रोसनाई आसनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै हाल के न ख्याल हूजै,
बेखुद फकीर, वह आशिक दिवाना है।

7. गुरु गोविंदसिंह जी ये सिक्खों के महापराक्रमी दसवें या अंतिम गुरु थे। इनका जन्म संवत् 1723 में और सत्यलोकवास संवत् 1765 में हुआ। यद्यपि सब गुरुओं ने थोड़े बहुत पद, भजन आदि बनाए हैं, पर ये महाराज काव्य के अच्छे ज्ञाता और ग्रंथकार थे। सिखों में शास्त्रज्ञान का अभाव इन्हें बहुत खटका था और इन्होंने बहुत से सिखों को व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था। ये हिंदू भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। 'तिलक' और 'जनेऊ' की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी। यद्यपि सिख संप्रदाय की निर्गुण उपासना है, पर सगुण स्वरूप के प्रति इन्होंने पूरी आस्था प्रकट की है और देवकथाओं की चर्चा बड़े भक्तिभाव से की है। यह बात प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के आराधक थे। इनके इस पूर्ण हिंदू भाव को देखने से यह बात समझ में नहीं आती कि वर्तमान समय में सिखों की एक शाखा विशेष के भीतर पैगंबरी मजहबों का कट्टरपन कहाँ से और किसकी प्रेरणा से आ घुसा है।

इन्होंने हिन्दी में कई अच्छे और साहित्यिक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं, सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धि सागर और चंडीचरित्र। चंडीचरित्र की रचना पद्धति बड़ी ही ओजस्विनी है। ये प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा लिखते थे। चंडीचरित्र की दुर्गासप्तशती की कथा बड़ी सुंदर कविता में कही गई है। इनकी रचना के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं,

निर्जर निरूप हौ, कि सुंदर सरूप हौ,
कि भूपन के भूप हौ, कि दानी महादान हौ?
प्रान के बचौया, दूध-पूत के देवैया,
रोग-सोग के मिटैया, किधौं मानी महामान हौ?
विद्या के विचार हौ, कि अद्वैत अवतार हौ,
कि सुद्ध ता की मूर्ति हौ कि सिद्ध ता की सान हौ?

जोबन के जाल हौ, कि कालहू के काल हौ,
कि सत्रुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ?

8. श्रीधर या मुरलीधर, ये प्रयाग के रहने वाले थे। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और बहुत सी फुटकल कविता बनाई। संगीत की पुस्तक, नायिकाभेद, जैन मुनियों के चरित्र, कृष्णलीला के फुटकल पद्य, चित्रकाव्य इत्यादि के अतिरिक्त इन्होंने 'जंगनामा' नामक ऐतिहासिक प्रबंध काव्य लिखा, जिसमें फर्रुखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध का वर्णन है। यह ग्रंथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इस छोटी सी पुस्तक में सेना की चढ़ाई, साज सामान आदि का कवित्त सवैया में अच्छा वर्णन है। इनका कविताकाल संवत् 1767 के आस-पास माना जा सकता है। 'जंगनामा' का एक कवित्त नीचे दिया जाता है,

इत गलगाजि चढयो फर्रुखसियर साह,
उत मौजदीन करी भारी भट भरती।
तोप की डकारनि सों बीर हहकारनि सों,
धौंसे की धुकारनि धामकि उठी धारती
श्रीधार नवाब फरजंदखाँ सुजंग जुरे,
जोगिनी अघाई जुग जुगन की बरती।
हहरयो हरौल, भीर गोल पै परी ही, तू न,
करतो हरौली तौ हरौले भीर परती।

9. लाल कवि, इनका नाम गोरे लाल पुरोहित था और ये मऊ (बुंदेलखंड) के रहने वाले थे। इन्होंने प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल की आज्ञा से उनका जीवनचरित दोहों चौपाइयों में बड़े ब्योरे के साथ वर्णन किया है। इस पुस्तक में छत्रसाल का संवत् 1764 तक का ही वृत्तांत आया है। इससे अनुमान होता है कि या तो यह ग्रंथ अधूरा ही मिला है अथवा लाल कवि का परलोकवास छत्रसाल के पूर्व ही हो गया था। जो कुछ हो इतिहास की दृष्टि से 'छत्रप्रकाश' बड़े महत्त्व की पुस्तक है। इसमें सब घटनाएँ सच्ची और सब ब्योरे ठीक ठीक दिए गए हैं। इसमें वर्णित घटनाएँ और संवत् आदि ऐतिहासिक खोज के अनुसार बिल्कुल ठीक हैं, यहाँ तक कि जिस युद्ध में छत्रसाल को भागना पड़ा है उसका भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यह ग्रंथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

ग्रंथ की रचना प्रौढ़ और काव्यगुणयुक्त है। लाल कवि में प्रबंधपटुता पूरी थी। संबंध का निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन विस्तार के लिए मार्मिक स्थलों का चुनाव भी। वस्तुपरिगणन द्वारा वर्णनों का अरुचिकर विस्तार बहुत ही कम मिलता है। सारांश यह कि लाल कवि का सा प्रबंध कौशल हिन्दी के कुछ इने गिने कवियों में ही पाया जाता है। शब्दवैचित्रय और चमत्कार के फेर में इन्होंने कृत्रिमता कहीं से नहीं आने दी है। भावों का उत्कर्ष जहाँ दिखाना हुआ है, वहाँ भी कवि ने सीधी और स्वाभाविक उक्तियों का ही समावेश किया है, न तो कल्पना की उड़ान दिखाई है और न ऊहा की जटिलता। देश की दशा की ओर भी कवि का पूरा ध्यान जान पड़ता है। शिवाजी का, जो वीरव्रत था वही छत्रसाल का भी था। छत्रसाल का जो भक्तिभाव शिवाजी पर कवि ने दिखाया है तथा दोनों के सम्मिलन का जो दृश्य खींचा है, दोनों इस संबंध में ध्यान देने योग्य हैं।

'छत्रप्रकाश' में लाल कवि ने बुंदेल वंश की उत्पत्ति, चंपतराय के विजयवृत्तांत, उनके उद्योग और पराक्रम, चंपतराय के अंतिम दिनों में उनके राज्य का उद्धार, फिर क्रमशः विजय पर विजय प्राप्त करते हुए मुगलों का नाकोंदम करना इत्यादि बातोंका विस्तार से वर्णन किया है। काव्य और इतिहास दोनों की दृष्टि से यह ग्रंथ हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा है। लाल कवि का एक और ग्रंथ 'विष्णुविलास' है, जिसमें बरवै छंद में नायिकाभेद कहा गया है। पर इस कवि की कीर्ति का स्तंभ 'छत्रप्रकाश' ही है।

'छत्रप्रकाश' से नीचे कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं,

(छत्रसाल प्रशंसा)

लखत पुरुष लच्छन सब जाने।
सतकबि कबित सुनत रस पागे।
रुचि सो लखत तुरंग जो नीके।
चौंकि चौंकि सब दिसि उठै सूबा खान खुमान।
अब धौं धावै कौन पर छत्रसाल बलवान

(युद्ध वर्णन)

छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो।
भयो हरौल बजाय नगारो।
दौरि देस मुगलन के मारौ।
एक आन शिवराज निबाही।

आठ पातसाही झकझोरे।
काटि कटक किरबान बल, बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि युद्ध यहि रीति सों, बाँटि धारनि धारि लेहु
चहुँ ओर सों सूबनि घेरो।
पजरे सहर साहि के बाँके।
कबहूँ प्रगटि युद्ध में हाँके।
बानन बरखि गयंदन फोरै।
कबहूँ उमड़ि अचानक आवै।
कबहूँ हाँकि हरौलन कूटै।
कबहूँ देस दौरि कै लावै।

10. घनआनंद ये साक्षात् रस मूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तंभों में हैं। इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग हुआ था और ये संवत् 1796 में नादिरशाही में मारे गए। ये जाति के कायस्थ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। कहते हैं कि एक दिन दरबार में कुछ कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह से इन्होंने बहुत टालमटोल किया। इस पर लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गाएँगे, यदि इनकी प्रेमिका सुजान नाम की वेश्या कहे तब गाएँगे। वेश्या बुलाई गई। इन्होंने उसकी ओर मुँह और बादशाह की ओर पीठ करके ऐसा गाना गाया कि सब लोग तन्मय हो गए। बादशाह इनके गाने पर जितना खुश हुआ उतना ही बेअदबी पर नाराज। उसने इन्हें शहर से निकाल दिया। जब ये चलने लगे तब सुजान से भी साथ चलने को कहा पर वह न गई। इस पर इन्हें विराग उत्पन्न हो गया और ये वृंदावन जाकर निंबार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे। वृंदावन भूमि का प्रेम इनके इस कवित्त से झलकता है,

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायो वृंदावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अभूत महिमंडन, परे तें परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहिरे
आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सो, पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे

संवत् 1796 में जब नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा तक आ पहुँचे तब कुछ लोगों ने उनसे कह दिया कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है, उसके पास बहुत कुछ माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें आ घेरा और 'जरजरजर' (अर्थात् धन, धन, धन लाओ) चिल्लाने लगे। घनानंद जी ने शब्द को उलटकर 'रज रज रज' कह कर तीन मुट्ठी वृंदावन की धूल उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा इसके और था ही क्या? सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। कहते हैं कि मरते समय इन्होंने अपने रक्त से यह कवित्त लिखा था,

बहुत दिनान को अवधि आसपास परे,
खरे अरबरन भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को
झूठी बतियानि को पत्यानि तें उदास हवै के,
अब ना घिरत घन आनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

घनआनंदजी के इतने ग्रंथों का पता लगता है, सुजानसागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकंद। इसके अतिरिक्त इनके कवित्त सवैयों के फुटकल संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं, कृष्णभक्ति संबंधी इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छत्रपुर के राजपुस्तकालय में है, जिसमें प्रियाप्रसाद, ब्रजव्यवहार, वियोगवेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, रसबसंत इत्यादिअनेक विषय वर्णित हैं। इनकी 'विरहलीला' ब्रजभाषा में, पर फारसी के छंद में है।

इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्ध ता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलंभशृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोगशृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। 'प्रेम की पीर' ही को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। अतः इनके संबंध में निम्नलिखित उक्ति बहुत ही संगत है,

नेही महा, ब्रजभाषाप्रवीन और सुंदरताहु के भेद को जानै।
योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषाप्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जू के कबित्ता बखानै

इन्होंने अपनी कविताओं में बराबर 'सुजान' को संबोधन किया है, जोश्रृंगार में नायक के लिए और भक्तिभाव में भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए। कहते हैं कि इन्हें अपनी पूर्वप्रेयसी 'सुजान' का नाम इतना प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने उसे नहीं छोड़ा। यद्यपि अपने पिछले जीवन में घनानंद विरक्त भक्त के रूप में वृंदावन जा रहे, पर इनकी अधिकांश कविता भक्तिभाव की कोटि में नहीं आएगी, श्रृंगार की ही कही जाएगी। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत्प्रेम में लीन हुए। कविता इनकी भावपक्ष प्रधान है। कोरे विभावपक्ष का चित्रण इनमें कम मिलता है। जहाँ रूप छटा का वर्णन इन्होंने किया भी है वहाँ उसके प्रभाव का ही वर्णन मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अंतर्वृत्ति निरूपण की ओर ही विशेष रहने के कारण बाह्यार्थ निरूपक रचना कम मिलती है। होली के उत्सव, मार्ग में नायक नायिका की भेंट, उनकी रमणीय चेष्टाओं आदि के वर्णन के रूप में ही वह पाई जाती है। संयोग का भी कहीं कहीं बाह्य वर्णन मिलता है, पर उसमें भी प्रधानता बाहरी व्यापारों की चेष्टाओं की नहीं है, हृदय के उल्लास और लीनता की ही है।

प्रेमदशा की व्यंजना ही इनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्यश्रृंगारी कवि में नहीं। इस दशा का पहला स्वरूप है हृदय या प्रेम का आधिपत्य और बुद्धि का अधीन पद, जैसा कि घनानंद ने कहा है,

'रीझ सुजान सची पटरानी, बची बुधि बापुरी हवै करि दासी।'

प्रेमियों की मनोवृत्ति इस प्रकार की होती है कि वे प्रिय की कोई साधारण चेष्टा भी देखकर उसका अपनी ओर झुकाव मान लिया करते हैं और फूले फिरते हैं। इसका कैसा सुंदर आभास कवि ने नायिका के इस वचन द्वारा दिया है, जो मन को संबोधन करके कहा गया है,

'रुचि के वे राजा जान प्यारे हैं आनंदघन,
होत कहा हेरे, रंक! मानि लीनो मेल सो'

कवियों की इसी अंतर्दृष्टि की ओर लक्ष्य करके एक प्रसिद्ध मनस्तत्त्ववेत्ता ने कहा है कि भावों या मनोविकारों के स्वरूप परिचय के लिए कवियों की

वाणी का अनुशीलन जितना उपयोगी है उतना मनोविज्ञानियों के निरूपण का नहीं।

प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानंद ने विरोधाभासों के द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्रय की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिए।

यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग संबंधी पद्य प्रसिद्ध हैं। वियोगवर्णन भी अधिकतर अंतर्वृत्तिनिरूपक हैं, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी माप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से यह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछलउछल कर भागना है। उनकी 'मौनमधि पुकार' है।

यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे। उनके हृदय का योग पाकर भाषा की नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नई प्रणाली परले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से नई शक्ति प्रदान की है। घनानंद जी उन विरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूपरंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधाड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।

लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोगवैचित्रय की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिककाल के उत्तरार्धा में, अर्थात् वर्तमानकाल की नूतन काव्यधारा में ही, 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई। घनानंद का प्रयोग वैचित्रय दिखाने के लिए कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं,

(क) अरसानि गही वह बानि कछू, सरसानि सो आनि निहोरत है।

(ख) हवै है सोऊ घरी भाग उघरी अनंदघन सुरस बरसि, लाल! देखिहौ हरी हमें!
('खुले भाग्यवाली घड़ी' में विशेषण-विपर्यय)।

(ग) उघरो जग, छाय रहे घन आनंद, चातक ज्यों तकिए अब तौ। (उघरो जग=संसार जो चारों ओर घेरे था वह दृष्टि से हट गया)।

(घ) कहिए सु कहा, अब मौन भली, नहिं खोवते जौ हमें पावते जू। (हमें=हमारा हृदय) विरोधमूलक वैचित्रय भी जगह जगह बहुत सुंदर मिलता है, जैसे,

(ड़) झूठ की सचाई छाक्यौ, त्यों हित कचाई पाक्यो, ताके गुनगन घनआनंद कहा गनौ।

(च) उजरनि बसी है हमारी अंखियानि देखो, सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हो।

(छ) गति सुनि हारी, देखि थकनि मैं चली जाति, थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।

(ज) तेरे ज्यों न लेखो, मोहि मारत परेखो महा, जान घनआनंद पे खोयबो लहत हैं।

इन उद्ध रणों से कवि की चुभती हुई वचनवक्रता पूरी पूरी झलकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि की उक्ति ने वक्र पथ हृदय के वेग के कारण पकड़ा है।

भाव का स्रोत जिस प्रकार टकराकर कहीं कहीं वक्रोक्ति के छींटे फेंकता है उसी प्रकार कहीं कहीं भाषा के स्निग्ध, सरल और चलते प्रवाह के रूप में भी प्रकट होता है। ऐसे स्थलों पर अत्यंत चलती और प्रांजल ब्रजभाषा की रमणीयता दिखाई पड़ती है,

क्षज्ञन्ळ प्श्रै ब्ळत्क्षायत मै।, ठक्लै न्ख ब्छ्ञ ज्ञन्ज्ञै क्ळज्ञ ल्म?
ळज्ञै म्न्ज्ञैळन्, म्ज्ञैळै क्ळँ न्, थ्ब्थ्ज्ञज्ञ थ्ब्मै न्ख म्ज्ञन्ज्ञै क्ळज्ञ ल्म?
ब्ज्ञैश्रै थ्ब्यज्ञैथन्ळ टज्ञप् रूज्ज्ञन् ळठै, ळज्ञय क्ळॅ डश्र टज्ञन्ज्ञै क्ळज्ञ ल्म?
टज्ञश्रथ्त्वात प्प्ळन् क्ज्ञै घ्ज्ञन्टज्ञनाछ ज॔! प्प्ळच्ज्ञन्ज्ञै क्ळज्ञ ल्म?
क्षज्ञश्रभ् वॅश्र क्ज्ञैथ्क्ल्ज्ञ क्ळज्ञँ क्ज्ञै ब्भैश्र क्षज्ञढ़थ्त श्रभ्,
वॅथ्क-वॅथ्क टब्ळभ् क्श्रैज्ज्ञै थ्क न्क्ज्ञैथ्श्र श्रै।
पैाड़ प्श्रै प्ज्ञप्भ यै क्ल्ज्ञप्भ थ्न्थ्साज्ञैस् ज्यज्ञै। ळभ्,

च्ज्ञत्क श्रै घ्ज्ञज्ञत्क ळठै लळॅ क्ज्ञन् ष्ज्ञैथ्श्र लै
टज्ञन्ाछ वै घ्ज्ञन् ष्ज्ञन् ज्भ्ब्न् रूज्ज्ञन् थ्ब्ज्ञ,
ज्ज्ञथ्न् वै टक्वैल्भ् स्ब घ्ज्ञैश्रज्ञै छल ज्ज्ञैथ्श्र लै।
ज्ज्ञै ल्ज्ञै। क्श्रै टज्ञव्न् थ्ब्ज्ञैछ ब्भ्रस्ज्ञव्न् ठै,
ल्ज्ञै ल्ज्ञै। श्रै डश्रज्ञश्रै ब्ब्म्ज्ञश्रै घ्ज्ञन् घ्ज्ञज्ञैथ्श्र लै

इस प्रकार की सरल रचनाओं में कहीं कहीं नादव्यंजना भी बड़ी अनूठी है। एक उदाहरण लीजिए,

ए रे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, वारि
तो सों और कौन मनै ढरकौं ही बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े को समान, घन
आनंदनिधान सुखदान दुखियानि दै
जान उजियारे, गुनभारे अति मोहि प्यारे
अब हवै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरहबिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन्ह पाँयन की हा हा! नैकु आनि दै

ऊपर के कवित्त के दूसरे चरण में आए हुए 'आनंदनिधान सुखदान दुखियानि दै' में मृदंग की ध्वनि का बड़ा ही सुंदर अनुकरण है।

उक्ति का अर्थगर्भत्व भी घनानंद का स्वतंत्र और स्वावलंबी होता है, बिहारी के दोहों के समान साहित्य की रूढ़ियों (जैसे, नायिकाभेद) पर आश्रित नहीं रहता। उक्तियों की सांगोपांग योजना या अन्विति इनकी निराली होती है। कुछ उदाहरण लीजिए,

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यो।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यों पचि कै रचि राखि बिसेख्यो
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जो आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
सो घनआनंद जान अजान लौं टूक कियो, पर बाँचि न देख्यो
आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौलौं?
कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलिहै?
मौन हू सों देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूकभरी मूकता बुलाय आप बोलिहै
जान घनआनंद यों मोहि तुम्हें पैज परी,
जानियैगो टेक टरें कौन धौं मलोलिहै।

रुई दिए रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की?
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै
अंतर में बासी पै प्रवासी कैसो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया! आपनीयौ ना कहौ।
लोचननि तारे हवै सुझायो सब, सूझौ नाँहिं,
बूझि न परति ऐसी सोचनि कहा दहौ
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न, अजान यातें,
आनंद के घन छाया छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हा हा! सूरति दिखैये नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो! कौन धौं लहालहौ
मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लैलै ऑजिहौं।
रतिरसना सवाद पाँवड़े पुनीतकारी पाय,
चूमि चूमि कै कपोलनि सों माँजिहौं
जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगिन में,
बोरि सब अंगन अनंग दुख भाँजिहौं।
कब घनआनंद ढरौही बानि देखें,
सुधा हेत मनघट दरकनि सुठि राँजिहौं
(राँजना, फूटे बरतन में जोड़ या टाँका लगाना)।
निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी छबि रंगभरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहैं, ढरिगो हिय ढोरनि बाहनिकी
चट दै कटि पै बट प्रान गए गति सों मति में अवगाहनि की।
घनआनंद जान लख्यो जब तें जक लागियै मोहि कराहनि की

इस अंतिम सवैये के प्रथम तीन चरणों में कवि ने बहुत सूक्ष्म कौशल दिखाया है। 'मुरि चाहनि' और 'तकि मोरनि' से यह व्यक्त किया गया है कि एक बार नायक ने नायिका की ओर मुड़कर देखा फिर देखकर मुड़ गए और अपना रास्ता पकड़ा। देखकर जब वे मुड़े तब नायिका का मन उनकी ओर इस प्रकार ढल पड़ा जैसे पानी नारी में ढल जाता है। कटि में बल देकर प्यारे नायिका के मन में डूबने के भय से निकल गए।

घनानंद के ये दो सवैये बहुत प्रसिद्ध हैं,
परकारज देह को धारे फिरौ परजन्य! जथारथ हवै दरसौ।

निधि नीर सुधा के समान करौ, सबही बिधि सुंदरता सरसौ
घनआनंद जीवनदायक हो, कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन में अंसुवान को लै बरसौ
अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलै तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं
('विरहलीला' से)

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवौ।
कहाँ हौ जू, कहाँ हौ जू, कहाँ हौ।
रहौ किन प्रान प्यारे नैन आगैं।
सजन! हित मान कै ऐसी न कीजै।

11. रसनिधि इनका नाम पृथ्वीसिंह था और ये दतिया के एक जमींदार थे। इनका संवत् 1717 तक वर्तमान रहना पाया जाता है। ये अच्छे कवि थे। इन्होंने बिहारी सतसई के अनुकरण पर 'रतनहजारा' नामक दोहों का एक ग्रंथ बनाया। कहीं कहीं तो बिहारी के वाक्य तक रख लिए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने और भी बहुत से दोहे बनाए जिनका संग्रह बाबू जगन्नाथ प्रसाद (छत्रपुर) ने किया है। 'अरिल्ल और माँझों का संग्रह भी खोज में मिला है। ये शृंगाररस के कवि थे। अपने दोहों में इन्होंने फारसी कविता के भाव भरने और चतुराई दिखाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। फारसी की आशिकी कविता के शब्द भी इन्होंने इस परिमाण में कहीं कहीं रखे हैं कि सुकवि और साहित्यिक शिष्टता को आघात पहुँचाता है। पर जिस ढंग की कविता इन्होंने की है, उसमें इन्हें सफलता हुई है। कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं,

अद्‌भुत गति यहि प्रेम की, बैनन कही न जाय।
दरस भूख लागै दृगन, भूखहिं देत भगाय
लेहु न मजनू गोर ढिग, कोऊ लैला नाम।
दरदवंत को नेकु तौ, लेन देहु बिसराम
चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराय।
कलस छुवत कर ओंगुरी कटी कटाछन जाय
मनगयंद छबि मद छके तोरि जँजीर भगात।
हिय के झीने तार सों सहजै ही बँधि जात

12. महाराज विश्वनाथ सिंह ये रीवाँ के बड़े ही विद्यारसिक और भक्त नरेश तथा प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराजसिंह के पिता थे। आप संवत् 1778 से लेकर 1797 तक रीवाँ की गद्दी पर रहे। ये जैसे भक्त थे वैसे ही विद्याव्यसनी तथा कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता थे। काव्यरचना में भी ये सिद्ध हस्त थे। यह ठीक है कि इनके नाम से प्रख्यात बहुत से ग्रंथ दूसरे कवियों के रचे हैं पर इनकी रचनाएँ भी कम नहीं हैं। नीचे इनकी बनाई पुस्तकों के नाम दिए जाते हैं जिनसे विदित होगा कि कितने विषयों पर इन्होंने लिखा है,

(1) अष्टयाम आह्निक, (2) आनंदरघुनंदन (नाटक), (3) उत्तमकाव्यप्रकाश, (4) गीतारघुनंदन शतिका, (5) रामायण, (6) गीता रघुनंदन प्रामाणिक, (7) सर्वसंग्रह, (8) कबीर बीजक की टीका, (9) विनयपत्रिका की टीका, (10) रामचंद्र की सवारी, (11) भजन, (12) पदार्थ, (13) धानुर्विद्या, (14) आनंद रामायण, (15) परधर्म निर्णय, (16) शांतिशतक, (17) वेदांत पंचकशतिका, (18) गीतावली पूर्वार्द्ध, (19) ध्रुवाष्टक, (20) उत्तम नीतिचंद्रिका, (21) अबोधनीति, (22) पाखंड खंडिका, (23) आदिमंगल, (24) बसंत चौंतीसी, (25) चौरासी रमैनी, (26) ककहरा, (27) शब्द,

(28) विश्वभोजनप्रसाद, (29) ध्यान मंजरी, (30) विश्वनाथ प्रकाश, (31) परमतत्त्व, (32) संगीत रघुनंदन इत्यादि।

यद्यपि ये रामोपासक थे, पर कुलपरंपरा के अनुसार निर्गुणसंत मत की बानी का भी आदर करते थे। कबीरदास के शिष्य धर्मदास का बांधावनरेश के यहाँ जाकर उपदेश सुनाना परंपरा से प्रसिद्ध है। 'ककहरा', 'शब्द', 'रमैनी' आदि उसी प्रभाव के द्योतक हैं। पर इनकी साहित्यिक रचना प्रधानत: रामचरित संबंधिनी है। कबीर बीजक की टीका इन्होंने निर्गुणब्रह्म के स्थान पर सगुण राम पर घटाई है। ब्रजभाषा में नाटक पहले पहल इन्होंने लिखा। इस दृष्टि से इनका 'आनंदरघुनंदन नाटक' विशेष महत्त्व की वस्तु है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। यद्यपि इसमें पद्यों की प्रचुरता है, पर संवाद सब ब्रजभाषा गद्य में है, अंकविधान और पात्रविधान भी है। हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में ये चिरस्मरणीय हैं।

इनकी कविता अधिकतर या तो वर्णनात्मक है अथवा उपदेशात्मक। भाषा स्पष्ट और परिमार्जित है। इनकी रचना के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत, भानु सो सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली सों बचे करि बुद्धि औ अस्त्र सों धर्म की रीति चलावै
जीतन को करै केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत है बिसुनाथ धा्रुवै नृप सो कबहूँ नहिं राज गँवावै
बाजि गज सोर रथ सुतूर कतार जेते,
प्यादे ऐंड़वारे जे सबीह सरदार के।
कुँवर छबीले जे रसीले राजबंस वारे,
सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के
केते जातिवारे, केते केते देसवारे,
जीव स्वान सिंह आदि सैलवारे जे सिकार के।
डंका की धुकार हवै सवार सबैं एक बार,
राजैं वार पार कार कोशलकुमार के
उठौ कुँवर दोउ प्रान पियारे।
हिमरितु प्रात पाय सब मिटिगे नभसर पसरे पुहकर तारे
जगवन महँ निकस्यो हरषित हिय बिचरन हेत दिवस मनियारो।
विश्वनाथ यह कौतुक निरखहु रविमनि दसहु दिसिन उजियारो
करि जो कर में कयलास लियो कसिके अब नाक सिकोरतहै।
दइ तालन बीस भुजा झहराय झुको धानु को झकझोरत है
तिल एक हलै न हलै पुहुमी रिसि पीसि के दाँतन तोरत है।
मन में यह ठीक भयो हमरे मद काको महेस न मोरत है

13. भक्तवर नागरीदासजी यद्यपि इस नाम से कई भक्त कवि ब्रज में हो गए, पर उनमें सबसे प्रसिद्ध कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावंतसिंह जी हैं, जिनका जन्म पौष कृष्ण 12 संवत् 1756 में हुआ था। ये बाल्यावस्था से ही बड़े शूरवीर थे। 13 वर्ष की अवस्था में इन्होंने बूँदी के हाड़ा जैत सिंह को मारा था। संवत् 1804 में ये दिल्ली के शाही दरबार में थे। इसी बीच में इनके पिता महाराज राजसिंह का देहांत हुआ। बादशाह अहमदशाह ने इन्हें दिल्ली में ही कृष्णागढ़ राज्य का उत्तराधिकार दिया, पर जब ये कृष्णगढ़ पहुँचे तब राज्य पर अपने भाई बहादुरसिंह का अधिकार पाया जो जोधपुर की सहायता से सिंहासन पर अधिकार कर बैठे थे। ये ब्रज की ओर लौट आए और मरहठों से सहायता लेकर इन्होंने अपने राज्य पर अधिकार किया। इस पर गृहकलह से इन्हें कुछ ऐसी विरक्ति हो गई कि ये सब छोड़ छाड़कर

वृंदावन चले गए और वहाँ विरक्त भक्त के रूप में रहने लगे। अपनी उस समय की चित्तवृत्ति का उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है,

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं, कलह सुखन को सूल।
सबै कलह इक राज में, राज कलह को मूल
कहा भयो नृप हू भए, ढोवत जग बेगार।
लेत न सुख हरि भक्ति को, सकल सुखन को सार
मैं अपने मन मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
वृंदावन की ओर तें, मति कबहूँ फिर जाय

वृंदावन पहुँचने पर वहाँ के भक्तों ने इनका बड़ा आदर किया। ये लिखते हैं कि पहले तो 'कृष्णगढ़ के राजा' यह व्यावहारिक नाम सुनकर वे कुछ उदासीन से रहे पर जब उन्होंने मेरे 'नागरीदास' (नागरी शब्द श्रीराधा के लिए आता है) नाम को सुना तब तो उन्होंने उठकर दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन किया,

सुनि व्यवहारिक नाम को ठाढ़े दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि नाम नागरीदास
इक मिलत भुजन भरि दौर दौर।
इक टेरि बुलावत और ठौर

वृंदावन में उक्त समय बल्लभाचार्य जी की गद्दी की पाँचवीं पीढ़ी थी। वृंदावन से इन्हें इतना प्रेम था कि एक बार ये वृंदावन के उस पार जा पहुँचे। रात को जब यमुना के किनारे लौटकर आए तब वहाँ कोई नाव बेड़ा न था। वृंदावन का वियोग इन्हें इतना असह्य हो गया कि ये यमुना में कूद पड़े और तैरकर वृंदावन आए। इस घटना का उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है,

देख्यो श्रीवृंदा बिपिन पार।
नहिं नाव, नाहिं कछु और दाव।
रहे बार लगन की लगै लाज।
यह चित्त माहिं करिकै विचार।

वृंदावन में इनके साथ इनकी उपपत्नी 'बणीठणीजी' भी रहती थीं, जो कविता भी करती थीं।

ये भक्त कवियों में बहुत ही प्रचुर कृति छोड़ गए हैं। इनका कविताकाल संवत1780 से 1819 तक माना जा सकता है। इनका पहला ग्रंथ 'मनोरथमंजरी' संवत् 1780 में पूरा हुआ। इन्होंने संवत् 1814 में आश्विन शुक्ल 10 को राज्य

पर अपने पुत्र सरदारसिंह जी को प्रतिष्ठित करके घरबार छोड़ा। इससे स्पष्ट है कि विरक्त होने के बहुत पहले ही ये कृष्णभक्ति और ब्रजलीला संबंधिनी बहुत सी पुस्तकें लिख चुके थे। कृष्णगढ़ में इनकी लिखी छोटी बड़ी सब मिलाकर 73 पुस्तकें संग्रहीत हैं जिनके नाम ये हैं,

सिंगारसार, गोपीप्रेमप्रकाश (संवत् 1800), पदप्रसंगमाला, ब्रजबैकुंठ तुला, ब्रजसार (संवत् 1799), भोरलीला, प्रातरसमंजरी, बिहारचंद्रिका, (संवत् 1788), भोजनानंदाष्टक, जुगलरस माधुरी, फूलविलास, गोधान-आगमन दोहन, आनंदलग्नाष्टक, फागविलास, ग्रीष्मबिहार, पावसपचीसी, गोपीबैनविलास, रासरसलता, नैनरूपरस, शीतसागर, इश्कचमन, मजलिस मंडन, अरिल्लाष्टक, सदा की माँझ, वर्षा ऋतु की माँझ, होरी की माँझ, कृष्णजन्मोत्सव कवित्त, प्रियाजन्मोत्सव कवित्त, साँझी के कवित्त, रास के कवित्त, चाँदनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, गोवर्ध्दनधारन के कवित्त, होरी के कवित्त, फागगोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्त, वर्षा के कवित्त, भक्तिमगदीपिका (1802), तीर्थानंद (1810), फागबिहार (1808), बालविनोद, वनविनोद (1809), सुजानानंद (1810), भक्तिसार (1799), देहदशा, वैराग्यवल्ली, रसिकरत्नावली (1782), कलिवैराग्यवल्लरी (1795), अरिल्लपचीसी, छूटक विधि, पारायण विधि प्रकाश (1799), शिखनख, नखशिख छूटक कवित्त, चचरियाँ, रेखता, मनोरथमंजरी (1780), रामचरित्रमाला, पदप्रबोधमाला, जुगल भक्तिविनोद (1808) रसानुक्रम के दोहे, शरद की माँझ, साँझी फूल बीनन संवाद, वसंतवर्णन, रसानुक्रम के कवित्त, फाग खेलन समेतानुक्रम के कवित्त, निकुंजविलास (1794), गोविंद परिचयी, वनजन प्रशंसा, छूटक दोहा, उत्सवमाला, पदमुक्तावली।

इनके अतिरिक्त 'वैनविलास' और 'गुप्तरसप्रकाश' नाम की दो अप्राप्य पुस्तकें भी हैं। इस लंबी सूची को देखकर आश्चर्य करने के पहले पाठक को यह जान लेना चाहिए कि ये नाम भिन्न भिन्न प्रसंगों वा विषयों के कुछ पद्यों में वर्णनमात्र हैं, जिन्हें यदि एकत्र करें तो 5 या 7 अच्छे आकार की पुस्तकों में आ जाएँगे। अतः ऊपर लिखे नामों को पुस्तकों के नाम न समझकर वर्णन के शीर्षकमात्र समझना चाहिए। इनमें से बहुतों को पाँच-पाँच, दस दस, पचीस पचीस, पद्य मात्र समझिए। कृष्णभक्त कवियों की अधिकांश रचनाएँ इसी ढंग की हैं। भक्तिकाल के इतने अधिक कवियों की कृष्णलीला संबंधिनी फुटकल उक्तियों से ऊबे हुए और केवल साहित्यिक दृष्टि रखने वाले पाठकों को नागरीदासजी की ये रचनाएँ अधिकांश में पिष्टपेषण सी प्रतीत होंगी। पर ये भक्त

थे और साहित्यरचना की नवीनता आदि से कोई प्रयोजन नहीं रखते थे। फिर भी इनकी शैली और भावों में बहुत कुछ नवीनता और विशिष्टता है। कहीं-कहीं बड़े सुंदर भावों की व्यंजना इन्होंने की है। कालगति के अनुसार फारसी काव्य का आशिकी और सूफियाना रंग ढंग भी कहीं कहीं इन्होंने दिखाया है। इन्होंने गाने के पदों के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, अरिल्ल, रोला आदि कई छंदों का व्यवहार किया है। भाषा भी सरस और चलती है विशेषत: पदों की। कवित्तों की भाषा में वह चलतापन नहीं है। कविता के नमूने नीचे देखिए,

(वैराग्यसागर से)

काहे को रे नाना मत सुनै तू पुरातन के,
तै ही कहा? तेरी मूढ़ गूढ़ मति पंग की।
वेद के विवादनि को पावैगो न पार कहूँ,
छाँड़ि देहु आस सब दान न्हान गंग की
और सिद्धि सोधो अब, नागर, न सिद्ध कछू,
मानि लेहु मेरी कही वात्तरा सुढंग की।
जाइ ब्रज भोरे! कोरे मन को रँगाइ ले रे,
वृंदावन रेनु रची गौर स्याम रंग की

(अरिल्ल)

अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों,
तिनके गृह नहिं रहैं संत सनमान सों,
उनकी संगति भूलि न कबहूँ जाइए,
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए

(पद)

जौ मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहिं कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय
एक जो तन हरिविमुखन के सँग रहतो देस विदेस।
विविधा भाँति के जग दुख सुख जहँ, नहीं भक्ति लवलेस
एक जौ तन सतसंग रंग रँगि रहतो अति सुखपूर।
जनम सफल करि लेतो ब्रज बसि जहँ ब्रज जीवन मूर
द्वै तन बिन द्वै काज न हवै हैं, आयु तौ छिन छिन छीजै।
नागरिदास एक तन तें अब कहौ काह करि लीजै

(मनोरथ मंजरी से)

चरन छिदत काँटेनि तें स्रवत रुधिर सुधि नाहिं।
पूछति हौं फिरि हौं भटू खग मृग तरु बन माहिं
कबै झुकत मो ओर को ऐहैं मदगज चाल।
गरबाहीं दीने दोऊ प्रिया नवल नंदलाल
(इश्क चमन से)
सब मजहब सब इल्म अरु सबै ऐश के स्वाद।
अरे इश्क के असर बिनु ये सबही बरबाद
आया इश्क लपेट में, लागी चश्म चपेट।
सोई आया खलक में, और भरैं सब पेट
(वर्षा के कवित्त से)
भादों की कारी अंधयारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रसरीति मलारहि गावै
ता समै मोहन के दृग दूरि तें आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारै, दया करि दामिनि दीप दिखावै

14. जोधाराजये गौड़ ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र थे। इन्होंने नीवँगढ़ (वर्तमान नीमराणा अलवर) के राजा चंद्रभान चौहान के अनुरोध से 'हम्मीररासो' नामक एक बड़ा प्रबंधकाव्य संवत् 1875 में लिखा जिसमें रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव का चरित्र वीरगाथाकाल की छप्पय पद्ध ति पर वर्णन किया गया है। हम्मीरदेव सम्राट पृथ्वीराज के वंशज थे। उन्होंने दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन को कई बार परास्त किया था और अंत में अलाउद्दीन की चढ़ाई में ही वे मारे गए थे। इस दृष्टि से इस काव्य के नायक देश के प्रसिद्ध वीरों में हैं। जोधाराज ने चंद आदि प्राचीन कवियों की पुरानी भाषा का भी यत्र तत्र अनुकरण किया है, जैसे जगह जगह 'हि' विभक्ति के प्राचीन रूप 'ह' का प्रयोग। 'हम्मीररासो' की कविता बड़ी ओजस्विनी है। घटनाओं का वर्णन ठीक ठीक और विस्तार के साथ हुआ है। काव्य का स्वरूप देने के लिए कवि ने कुछ घटनाओं की कल्पना भी की है जैसे महिमा मंगोल का अपनी प्रेयसी वेश्या के साथ दिल्ली से भागकर हम्मीरदेव की शरण में आना और अलाउद्दीन का दोनों को माँगना। यह कल्पना राजनीतिक उद्देश्य हटाकर प्रेम प्रसंग को युद्ध का कारण बताने के लिए, प्राचीन कवियों की प्रथा के अनुसार की गई है। पीछे संवत् 1902 में चंद्रशेखर वाजपेयी ने जो हम्मीरहठ लिखा उसमें भी यह घटना

ज्यों की त्यों ले ली गई है। ग्वाल कवि के हम्मीरहठ में भी बहुत संभव है कि, यह घटना ली गई होगी।

प्राचीन वीरकाल के अंतिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था, उसी रूप में उसी प्रकार की भाषा में जोधाराज अंकित करने में सफल हुए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इन्हें हिन्दी काव्य की ऐतिहासिक परंपरा की अच्छी जानकारी थी, यह बात स्पष्ट लक्षित होती है। नीचे इनकी रचना के कुछ नमूने उद्धृत किए जाते हैं,

कब हठ करै अलावदी रणथँभवर गढ़ आहि।
कबै सेख सरनै रहै बहुरयो महिमा साहि
सूर सोच मन में करौ, पदवी लहौ न फेरि।
जो हठ छंडो राव तुम, उत न लजै अजमेरि
सरन राखि सेख न तजौ, तजौ सीस गढ़ देस।
रानी राव हमीर को यह दीन्हौं उपदेस
कहँ पवार जगदेव सीस आपन कर कट्टयो।
कहाँ भोज विक्रम सुराव जिन परदुख मिट्टयो
सवा भार नित करन कनक विप्रन को दीनो।
रह्यो न रहिए कोय देव नर नाग सु चीनो
यह बात राव हम्मीर सूँ रानी इमि आसा कही।
जो भई चक्कवै मंडली सुनौ राव दीखै नहीं
जीवन मरन सँजोग जग कौन मिटावै ताहि।
जो जनमै संसार में अमर रहै नहिं आहि
कहाँ जैत कहँ सूर, कहाँ सोमेस्वर राणा।
कहाँ गए प्रथिराज साह दल जीति न आणा
होतब मिटै न जगत में कीजै चिंता कोहि।
आसा कहै हमीर सौं अब चूकौ मति सोहि
पुंडरीक सुत सुता तासु पद कमल मनाऊँ।
बिसद बरन बर बसन बिषद भूषन हिय धयाऊँ
बिषद जंत्र सुर सुद्ध तंत्र सुंदर जेत सोहै।
विषद ताल इक भुजा, दुतिय पुस्तक मन मोहै
मति राजहंस हंसन चढ़ी रटी सुरन कीरति बिमल।
जय मातु सदा बरदायिनी, देहु सदा बरदान बल

15. बख्शी हंसराज ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म संवत् 1799 में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज बख्शी हरिकिशुन जी पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराज जी पन्नानरेश श्री अमानसिंह जी के दरबारियों में थे। ये ब्रज की व्यास गद्दी के 'विजयसखी' नामक महात्मा के शिष्य थे, जिन्होंने इनका सांप्रदायिक नाम 'प्रेमसखी' रखा था। 'सखी भाव' के उपासक होने के कारण इन्होंने अत्यंत प्रेम माधुर्यपूर्ण रचनाएँ की हैं। इनके चार ग्रंथ पाए जाते हैं,

(1) सनेहसागर, (2) विरहविलास, (3) रामचंद्रिका, (4) बारहमासा (संवत् 1811)।

इनमें से प्रथम बड़ा ग्रंथ है। दूसरा शायद इनकी पहली रचना है। 'सनेहसागर' का संपादन श्रीयुत् लाला भगवानदीन जी बड़े अच्छे ढंग से कर चुके हैं। शेष ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुए हैं।

'सनेहसागर' नौ तरंगों में समाप्त हुआ है, जिनमें कृष्ण की विविधा लीलाएँ सार छंद में वर्णन की गई हैं। भाषा बहुत ही मधुर, सरस और चलती है। भाषा का ऐसा स्निग्ध सरल प्रवाह बहुत ही कम देखने में आता है। पदविन्यास अत्यंत कोमल और ललित है। कृत्रिमता का लेश नहीं। अनुप्रास बहुत ही संयत मात्रा में और स्वाभाविक है। माधुर्य प्रधानतः संस्कृत की पदावली का नहीं, भाषा की सरल सुबोध पदावली का है। एक शब्द का भी समावेश व्यर्थ केवल पादपूर्त्यअर्थ नहीं है। सारांश यह कि इनकी भाषा सब प्रकार से आदर्श भाषा है। कल्पना भावविधान में ही पूर्णतया प्रवृत्त है, अपनी अलग उड़ान दिखाने में नहीं। भावविकास के लिए अत्यंत परिचित और स्वाभाविक व्यापार ही रखे गए हैं। वास्तव में 'सनेहसागर' एक अनूठा ग्रंथ है। उसके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं,

दमकति दिपति देह दामिनि सी चमकत चंचल नैना।
घूँघट बिच खेलत खंजन से उड़ि उड़ि दीठि लगै ना
लटकति ललित पीठ पर चोटी बिच बिच सुमन सँवारी।
देखे ताहि मैर सो आवत, मनहु भुजंगिनी कारी
इत ते चली राधिका गोरी सौंपन अपनी गैया।
उत तें अति आतुर आनंद सों आये कुँवर कन्हैया
कसि भौहैं, हँसि कुँवरि राधिका कान्ह कुँवर सों बोली।
अंग अंग उमगि भरे आनंद सौं, दरकति छिन छिन चोली

एरे मुकुटवार चरवाहे! गाय हमारी लीजौ।
जाय न कहूँ तुरत की ब्यानी, सौंपि खरक कै दीजौ
होहु चरावनहार गाय के बाँधानहार छुरैया।
कलि दीजौ तुम आय दोहनी, पावै दूध लुरैया
कोऊ कहूँ आय बनवीथिन या लीला लखि जैहै।
कहि कहि कुटिल कठिन कुटिलन सों सिंगरे ब्रजबगरैहै
जो तुम्हरी इनकी ये बातैं सुनिहैं कीरति रानी।
तौ कैसै पटिहै पाटे तें, घटिहै कुल को पानी

16. जनकराज किशोरीशरण ये अयोध्या के एक वैरागी थे और संवत् 1797में वर्तमान थे। इन्होंने भक्ति, ज्ञान और रामचरित संबंधिनी बहुत-सी कविता की है। कुछ ग्रंथ संस्कृत में भी लिखे हैं। हिन्दी कविता साधारणत: अच्छी है। इनकी बनाई पुस्तकों के नाम ये हैं,

आंदोलनरहस्य दीपिका, तुलसीदासचरित्र, विवेकसार चंद्रिका, सिद्धांत चौंतीसी, बारहखड़ी, ललित शृंगार दीपक, कवितावली, जानकीशरणाभरण, सीताराम सिद्धांतमुक्तावली, अनन्यतरंगिणी, रामरसतरंगिणी, आत्मसंबंधदर्पण, होलिकाविनोददीपिका, वेदांतसार, श्रुतिदीपिका, रसदीपिका, दोहावली, रघुवर करुणाभरण।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि इन्होंने राम सीता केशृंगार, ऋतुबिहार आदि के वर्णन में ही भाषा कविता की है। इनका एक पद्य आगे दिया जाता है,

फूले कुसुम द्रुम विविधा रंग सुगंधा के चहुँ चाब।
गुंजत मधुप मधुमत्ता नाना रंग रज अंग फाब
सीरो सुगंधा सुमंद बात विनोद कंत बहंत।
परसत अनंग उदोत हिय अभिलाष कामिनिकंत

17. अलबेली अलि ये विष्णुस्वामी संप्रदाय के महात्मा 'वंशीअलि' जी के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त इनका कोई वृत्त ज्ञात नहीं। अनुमान से इनका कविताकाल विक्रम की 18वीं शताब्दी का अंतिम भाग आता है। ये भाषा के सत्कवि होने के अतिरिक्त संस्कृत में भी सुंदर रचना करते थे जिसका प्रमाण इनका लिखा 'श्रीस्रोत' है। इन्होंने 'समयप्रबंध पदावली' नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें 313 बहुत ही भावभरे पद हैं। नीचे कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं,

लाल तेरे लोभी लोलुप नैन।
केहि रस छकनि छके हौ छबीले मानत नाहिन चौन

नींद नैन घुरि घुरि आवत अति, घोरि रही कछु नैन
अलबेली अलि रस के रसिया, कत बिसरत ये बैन
बने नवल प्रिय प्यारी।
सरद रैन उजियारी
सरद रैन सुखदैन मैनमय जमुनातीर सुहायो।
सकल कलापूरन ससि सीतल महिमंडल पर आयो
अतिसय सरस सुगंधा मंद गति बहत पवन रुचिकारी।
नव नव रूप नवल नव जोबन बने नवल पिय प्यारी

18. चाचा हित वृंदावन दास ये पुष्कर क्षेत्र के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे और संवत् 1765 में उत्पन्न हुए थे। ये राधाबल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी के शिष्य थे। तत्कालीन गोसाईं जी के पिता के गुरु भ्राता होने के कारण गोसाईं जी की देखा देखी सब लोग इन्हें 'चाचाजी' कहने लगे। ये महाराज नागरीदास जी के भाई बहारदुरसिंह जी के आश्रय में रहते थे, पर जब राजकुल में विग्रह उत्पन्न हुआ तब ये कृष्णगढ़ छोड़कर वृंदावन चले आए और अंत समय तक वहीं रहे। संवत् 1800 से लेकर संवत् 1844 तक की इनकी रचनाओं का पता लगता है। जैसे सूरदास के सवा लाख पद बनाने की जनश्रुति है, वैसे ही इनके भी एक लाख पद और छंद बनाने की बात प्रसिद्ध है। इनमें से 20, 000 के लगभग पद्य तो इनके मिले हैं। इन्होंने नखशिख, अष्टयाम, समयप्रबंध, छर्लिीला आदि असंख्य प्रसंगों का विशद वर्णन किया है। छिर्लीलाओं का वर्णन तो बड़ा ही अनूठा है। इनके ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुए हैं। रागरत्नाकर आदि ग्रंथों में इनके बहुत से पद संगृहीत मिलते हैं। छत्रपुर के राजपुस्तकालय में इनकी बहुत सी रचनाएँ सुरक्षित हैं।

इतने अधिक परिमाण में होने पर भी इनकी रचना शिथिल या भरती की नहीं है। भाषा पर इनका पूरा अधिकार प्रकट होता है। लीलाओं के अंतर्गत वचन और व्यापार की योजना भी इनकी कल्पना की स्फूर्ति का परिचय देती है। इनके दो पद नीचे दिए जाते हैं,

(मनिहारी लीला से)
मिठबोलनी नवल मनिहारी।
भौंहें गोल गरूर हैं, याके नयन चुटीले भारी।
चूरी लखि मुख तें कहै, घूँघट में मुसकाति।
ससि मनु बदरी ओट तें दुरि दरसत यहि भाँति।

चूरो बड़ो है मोल को, नगर न गाहक कोय।
मो फेरी खाली परी, आई सब घर टोय
प्रीतम तुम मो दृगन बसत हो।
कहा भरोसे हवै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं तौ लसत हौ।
वृंदावन हित रूप रसिक तुम, कुंज लड़ावत हिय हुलसत हौ

19. गिरधर कविराय इनका कुछ भी वृत्तांत ज्ञात नहीं। नाम से भाट जान पड़ते हैं। शिवसिंह ने इनका जन्म संवत् 1770 दिया है, जो संभवतः ठीक हो। इस हिसाब से इनका कविता काल संवत् 1800 के उपरांत ही माना जा सकता है। इनकी नीति की कुंडलियाँ ग्राम ग्राम में प्रसिद्ध हैं। अनपढ़ लोग भी दो-चार चरण जानते हैं। इस सर्वप्रियता का कारण है, बिल्कुल सीधी सादी भाषा में तथ्याभाव का कथन। इनमें न तो अनुप्रास आदि द्वारा भाषा की सजावट है, न उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का चमत्कार। कथन की पुष्टि मात्र के लिए (अलंकार की दृष्टि से नहीं) दृष्टांत आदि इधर उधर मिलते हैं। कहीं कहीं पर बहुत कम, कुछ अन्योक्ति का सहारा इन्होंने लिया है। इन सब बातों के विचार से ये कोरे 'पद्यकार' ही कहे जा सकते हैं, सूक्तिकार भी नहीं। वृंद कवि में और इनमें यही अंतर है। वृंद ने स्थान स्थान पर अच्छी घटती हुई और सुंदर उपमाओं आदि का भी विधान किया है। पर इन्होंने कोरा तथ्यकथन किया है। कहीं कहीं तो इन्होंने शिष्टता का ध्यान भी नहीं रखा है। घर गृहस्थी के साधारण व्यवहार, लोक व्यवहार आदि का बड़े स्पष्ट शब्दों में इन्होंने कथन किया है। यही स्पष्टता इनकी सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है। दो कुंडलियाँ दी जाती हैं,

साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरनाकुस अरु कंस को गयो दुहुन को राज
गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे।
दुसमन दावागीर भए महिमंडल सिगरे
कह गिरिधर कविराय जुगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई
रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय।
छाँह न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।

जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै
कह गिरधार कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिए

20. भगवत रसिकये टट्टी संप्रदाय के महात्मा स्वामी ललित मोहनीदास के शिष्य थे। इन्होंने गद्दी का अधिकार नहीं लिया और निर्लिप्त भाव से भगवद्भजन में लगे रहे। अनुमान से इनका जन्म संवत् 1795 के लगभग हुआ। अतः इनका रचनाकाल संवत् 1830 और 1850 के बीच माना जा सकता है। इन्होंने अपनी उपासना से संबंध रखने वाले अनन्य प्रेमरसपूर्ण बहुत से पद, कवित्त, कुंडलियाँ, छप्पय आदि रचे हैं जिनमें एक ओर तो वैराग्य का भाव और दूसरी ओर अनन्य प्रेम का भाव छलकता है। इनका हृदय प्रेमरसपूर्ण था। इसी से इन्होंने कहा है कि 'भगवत रसिक रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।' ये कृष्णभक्ति में लीन एक प्रेमयोगी थे। इन्होंने प्रेमतत्त्व का निरूपण बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। कुछ पद्य नीचे दिए जाते हैं,

कुंजन तें उठि प्रात गात जमुना में धोवैं।
निधुवन करि दंडवत बिहारी को मुख जोवैं
करैं भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा।
घर घर लेय प्रसाद लगै जब भोजन साधा
संग करै भगवत रसिक, कर करवा गूदरि गरे।
बृंदावन बिहरत फिरै, जुगल रूप नैनन भरै
माया काल तहाँ नहिं व्यापै जहाँ रसिक सिरमौर
छूटि जाति सत असत वासना, मन की दौरादौर।
भगवत रसिक बतायो श्रीगुरु अमल अलौकिक ठौर

21. श्री हठीजी ये श्री हितहरिवंश जी की शिष्य परंपरा में बड़े ही साहित्यमर्मज्ञ और कलाकुशल कवि हो गए हैं। इन्होंने संवत् 1837 में 'राधासुधाशतक' बनाया जिसमें 11 दोहे और 103 कवित्त सवैया हैं। अधिकांश भक्तों की अपेक्षा इनमें विशेषता यह है कि इन्होंने कलापक्ष पर भी पूरा जोर दिया है। इनकी रचना में यमक, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का बाहुल्य पाया जाता है। पर साथ ही भाषा या वाक्य विन्यास में लद्ध ड़पन नहीं आने पाया है। वास्तव में 'राधासुधाशतक' छोटा होने पर भी अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र को यह ग्रंथ अत्यंत प्रिय था। उससे कुछ अवतरण नीचे दिए जाते हैं,

कलप लता के किधौं पल्लव नवीन दोऊ,
हरन मंजुता के कंज ताके बनिता के हैं।
पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छबि
छलै सबिता के जनता के गुरुताके हैं
नवौं निधि ताके सिद्ध ता के आदि आलै हठी,
तीनौ लोकता के प्रभुता के प्रभु ताके हैं।
कटै पाप ताकै बढ़ै पुन्य के पताके जिन,
ऐसे पद ताके वृषभानु की सुता के हैं
गिरि कीजै गोधान मयूर नव कुंजन को,
पसु कीजै महराज नंद के नगर को।
नर कौन, तौन जौन राधो राधो नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर हठी के झगर को।
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर को

22. गुमान मिश्र ये महोबे के रहने वाले गोपालमणि के पुत्र थे। इनके तीन भाई और थे। दीपसाहि, खुमान और अमान। गुमान ने पिहानी के राजा अकबरअली खाँ के आश्रय में संवत् 1800 में श्री हर्षकृत नैषधा काव्य का पद्यानुवाद नाना छंदों में किया। यही ग्रंथ इनका प्रसिद्ध है और प्रकाशित भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त खोज में इनके दो ग्रंथ और मिले हैं, कृष्णचंद्रिका और छंदाटवी (पिंगल)। कृष्णचंद्रिका का निर्माणकाल संवत् 1838 है। अतः इनका कविताकाल संवत् 1800 से 1840 तक माना जा सकता है। इन तीनों ग्रंथों के अतिरिक्त रस, नायिकाभेद, अलंकार आदि कई और ग्रंथ सुने जाते हैं।

यहाँ केवल इनके नैषधा के संबंध में ही कुछ कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में इन्होंने बहुत से छंदों का प्रयोग किया है और बहुत जल्दी-जल्दी छंद बदले हैं। इंद्रवज्रा, वंशस्थ, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीड़ित आदि कठिन वर्णवृत्तों से लेकर दोहा चौपाई तक मौजूद हैं। ग्रंथारंभ में अकबरअली खाँ की प्रशंसा मंद, जो बहुत से कवित्त इन्होंने कहे हैं, उनसे इनकी चमत्कारप्रियता स्पष्ट प्रकट होती है। उनमें परिसंख्या अलंकार की भरमार है। गुमान जी अच्छे साहित्यमर्मज्ञ और

काव्यकुशल थे, इसमें कोई संदेह नहीं। भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। जिन श्लोकों के भाव जटिल नहीं हैं उनका अनुवाद बहुत ही सरस और सुंदर है। वह स्वतंत्र रचना के रूप में प्रतीत होता है पर जहाँ कुछ जटिलता है वहाँ की वाक्यावली उलझी हुई और अर्थ अस्पष्ट है। बिना मूल श्लोक सामने आए ऐसे स्थानों का स्पष्ट अर्थ निकालना कठिन ही है। अत: सारी पुस्तक के संबंध में यही कहना चाहिए कि अनुवाद में वैसी सफलता नहीं हुई है। संस्कृत के भावों के सम्यक् अवतरण में यह असफलता गुमान ही के सिर नहीं मढ़ी जा सकती। रीतिकाल के जिन जिन कवियों ने संस्कृत से अनुवाद करने का प्रयत्न किया है, उनमें बहुत से असफल हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इस काल में जिस मधुर रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ वह सरल व्यंजना के तो बहुत ही अनुकूल हुआ पर जटिल भावों और विचारों के प्रकाश में वैसा समर्थ नहीं हुआ। कुलपति मिश्र ने 'रसरहस्य' में काव्यप्रकाश का जो अनुवाद किया है उसमें भी जगह जगह इसी प्रकार अस्पष्टता है।

गुमानजी उत्तम श्रेणी के कवि थे, इसमें संदेह नहीं। जहाँ वे जटिल भाव भरने की उलझन में नहीं पड़े हैं वहाँ की रचना अत्यंत मनोहारिणी हुई है। कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं,

दुर्जन की हानि, बिरधापनोई करै पीर,
गुन लोप होत एक मोतिन के हार ही।
टूटे मनिमालै निरगुन गायताल लिखै,
पोथिन ही अंक, मन कलह विचारही
संकर बरन पसु पच्छिन में पाइयत,
अलक ही पारै अंसभंग निराधार ही।
चिर चिर राजौ राज अली अकबर, सुरराज
के समाज जाके राज पर बारही
दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि,
धूरि की धुंधोरी सों अंधेरी आभा भान की।
धाम औ धारा को, माल बाल अबला को अरि,
तजत परान राह चाहत परान की
सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल,
चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।
फिर फिर फननि फनीस उलटतु ऐसे,

चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पानकी
न्हाती जहाँ सुनयना नित बावली में,
छूटे उरोजतल कुंकुम नीर ही में।
श्रीखंड चित्र दृग अंजन संग साजै,
मानौ त्रिबेनि नित ही घर ही बिराजै
हाटक हंस चल्यो उड़िकै नभ में दुगुनी तन ज्योति भई।
लीक सी खैंचि गयो छन में छहराय रही छबि सोनमई।
नैनन सों निरख्यो न बनायकै कै उपमा मन माहिं लई।
स्यामल चीर मनौ पसरयो तेहि पै कल कंचन बेलि नई

23. सरजूराम पंडित इन्होंने 'जैमिनीपुराण भाषा' नामक एक कथात्मक ग्रंथ संवत् 1805 में बनाकर तैयार किया। इन्होंने अपना कुछ भी परिचय अपने ग्रंथ में नहीं दिया है। जैमिनीपुराण दोहों, चौपाइयों में तथा और कई छंदों में लिखा गया है और 36 अधयायों में समाप्त हुआ है। इसमें बहुत-सी कथाएँ आई हैं, जैसे युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ, संक्षिप्त रामायण, सीतात्याग, लवकुश युद्ध, मयूरधवज, चंद्रहास आदि राजाओं की कथाएँ। चौपाइयों का ढंग 'रामचरितमानस' का सा है। कविता इनकी अच्छी हुई है। उसमें गांभीर्य है। नमूने के लिए कुछ पद नीचे दिए जाते हैं,

गुरुपद पंकज पावन रेनू।
गुरुपद रज अज हरिहर धामा।
तब लगि जग जड़ जीव भुलाना।
श्री गुरु पंकज पाँव पसाऊ।
सुमिरत होत हृदय असनाना।

24. भगवंत राय खीची ये असोथर (जिला, फतेहपुर) के बड़े गुणग्राही राजा थे जिनके यहाँ बराबर अच्छे अच्छे कवियों का सत्कार होता रहता था। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि इन्होंने सातों कांड रामायण बड़े सुंदर कवित्तों में बनाई है। यह रामायण तो इनकी नहीं मिलती पर हनुमान जी की प्रशंसा के 50 कवित्त इनके अवश्य पाए गए हैं, जो संभव है रामायण के ही अंश हों। खोज में इनकी 'हनुमत् पचीसी' मिली है उसमें निर्माणकाल 1817 दिया है। इनकी कविता बड़ी ही उत्साहपूर्ण और ओजस्विनी है। एक कवित्त देखिए,

विदित बिसाल ढाल भालु कपि जाल की है,
ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की।
जाहि सों चपेटि कै गिराए गिरि गढ़ जासों,
कठिन कपाट तोरे, लंकनी सो मार की
भनै भगवंत जासों लागि लागि भेंटे प्रभु,
जाके त्रस लखन को छुभिता खुमार की।
ओढ़े ब्रह्म अस्त्र की अवाती महाताती, बंदौ
युद्ध मत माती छाती पवनकुमार की

25. सूदन, ये मथुरा के रहने वाले माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम बसंत था। सूदन भरतपुर के महाराज बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल के यहाँ रहते थे। उन्हीं के पराक्रमपूर्ण चरित्र का वर्णन इन्होंने 'सुजानचरित' नामक प्रबंधकाव्य में किया है। मुगल साम्राज्य के गिरे दिनों में भरतपुर के जाट राजाओं का कितना प्रभाव बढ़ा था यह इतिहास में प्रसिद्ध है। उन्होंने शाही महलों और खजानों को कई बार लूटा था। पानीपत की अंतिम लड़ाई के संबंध में इतिहासज्ञों की धारणा है कि यदि पेशवा की सेना का संचालन भरतपुर के अनुभवी महाराज के कथनानुसार हुआ होता और ये रूठकर न लौट आए होते तो मराठों की हार कभी न होती। इतने ही से भरतपुर वालों के आतंक और प्रभाव का अनुमान हो सकता है। अत: सूदन को एक सच्चा वीर चरित्रनायक मिल गया।

'सुजानचरित' बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें संवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओं का वर्णन है। अत: इसकी समाप्ति 1810 के दस पंद्रह वर्ष पीछे मानी जा सकती है। इस हिसाब से इनका कविताकाल संवत् 1820 के आस-पास मानाजा सकता है। सूरजमल की वीरता की, जो घटनाएँ कवि ने वर्णित की हैं वे कपोलकल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। जैसे अहमदशाह बादशाह के सेनापति असद खाँ के फतहअली पर चढ़ाई करने पर सूरजमल का फतहअली के पक्ष में होकर असद खाँ का ससैन्य नाश करना, मेवाड़, माड़ौगढ़ आदि जीतना, संवत् 1804 में जयपुर की ओर होकर मरहठों को हटाना, 1805 में बादशाही सेनापति सलावतखाँ बख्शी को परास्त करना, संवत् 1806 में शाही वजीर सफदरजंग मंसूर की सेना से मिलकर बंगश पठानों पर चढ़ाई करना, बादशाह से लड़कर दिल्ली लूटना, इत्यादि। इन सब बातों के विचार से 'सुजानचरित' का ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत कुछ है।

इस काव्य की रचना के संबंध में सबसे पहली बात जिस पर ध्यान जाता है वह वर्णनों का अत्यधिक विस्तार और प्रचुरता है। वस्तुओं की गिनती-गिनाने की प्रणाली का इस कवि ने बहुत अधिक अवलंबन किया है, जिससे पाठकों को बहुत से स्थलों पर अरुचि हो जाती है। कहीं घोड़ों की जातियों के नाम ही गिनते चले गए हैं, कहीं अस्त्रों और वस्त्रों की सूची की भरमार है, कहीं भिन्न भिन्न देशवासियों और जातियों की फिहरिस्त चल रही है। इस कवि को साहित्यिक मर्यादा का ध्यान बहुत ही कम था। भिन्न-भिन्न भाषाओं, बोलियों को लेकर कहीं कहीं इन्होंने पूरा खेलवाड़ किया है। ऐसे चरित्र को लेकर जो गांभीर्य काव्य में होना चाहिए था वह इनमें नहीं पाया जाता। पद्य में व्यक्तियों और वस्तुओं के नाम भरने की निपुणता इस कवि की एक विशेषता समझिए। ग्रंथारंभ में ही 175 कवियों के नाम गिनाए गए हैं। सूदन में युद्ध, उत्साहपूर्ण भाषण, चित्त की उमंग आदि वर्णन करने की पूरी प्रतिभा थी पर उक्त त्रुटियों के कारण उनके ग्रंथ का साहित्यिक महत्त्व बहुत कुछ घटा हुआ है। प्रगल्भता और प्रचुरता का प्रदर्शन सीमा का अतिक्रमण कर जाने के कारण जगह जगह खटकता है। भाषा के साथ भी सूदनजी ने पूरी मनमानी की है। पंजाबी, खड़ी बोली, सबका पुट मिलता है। न जाने कितने गढ़ंत के और तोड़े मरोड़े शब्द लाए गए हैं। जो स्थल इन सब दोषों से मुक्त हैं वे अवश्य मनोहर हैं, पर अधिकतर शब्दों की तड़ातड़ भड़ा-भड़ से जी ऊबने लगता है। यह वीररसात्मक ग्रंथ है और इसमें भिन्न भिन्न युद्धों का ही वर्णन है इससे अध्यायों का नाम जंग रखा गया है। सात जंगों में ग्रंथ समाप्त हुआ है।

26. हरनारायण इन्होंने 'माधवानल कामकंदला' और 'बैताल पचीसी' नामकदोकथात्मक काव्य लिखे हैं। 'माधावानल कामकंदला' का रचनाकाल संवत् 1812 है। इनकी कविता अनुप्रास आदि से अलंकृत हैं। एक कवित्त दिया जाताहै,

सोहैं मुंड चंद सों, त्रिपुंड सों विराजै भाल,
तुंड राजै रदन उदंड के मिलन तें।
पाप रूप पानिप विघन जल जीवन के
कुंड सोखि सुजन बचावै अखिलन तें
ऐसे गिरिनंदिनी के नंदन को ध्यान ही में
कीबे छोड़ सकल अपानहि दिलन तें।

भुगुति मुकुति ताके तुंड तें निकसि तापै,
कुंड बाँधि कढ़ती भूसुंड के विलन तें

27. ब्रजवासी दास, ये वृंदावन के रहने वाले और बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने संवत् 1827 में 'ब्रजविलास' नामक एक प्रबंधकाव्य तुलसीदास के अनुकरण पर दोहों चौपाइयों में बनाया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का अनुवाद भी विविधा छंदों में किया है। पर इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रजविलास' ही है, जिसका प्रचार साधारण श्रेणी के पाठकों में है। इस ग्रंथ में कथा भी सूरसागर क्रम से ली गई है और बहुत से स्थलों पर सूर के शब्द और भाव भी चौपाइयों में रख दिए गए हैं। इस बात को ग्रंथकार ने स्वीकार भी किया है,

यामैं कछुक बुद्धि नहिं मेरी। उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी।

इन्होंने तुलसी का छंदक्रम ही लिया है, भाषा शुद्ध ब्रजभाषा ही है। उसमें कहीं अवधी या बैसवाड़ी का नाम तक नहीं है। जिनको भाषा की पहचान तक नहीं, जो वीररस वर्णन परिपाटी के अनुसार किसी पद्य में वर्णों का द्वित्व देख उसे प्राकृत भाषा कहते हैं, वे चाहे जो कहें। ब्रजविलास में कृष्ण की भिन्न-भिन्न लीलाओं का जन्म से लेकर मथुरा गमन तक का वर्णन किया गया है। भाषा सीधी सादी, सुव्यवस्थित और चलती हुई है। व्यर्थ शब्दों की भरती न होने से उसमें सफाई है। यह सब होने पर भी इसमें वह बात नहीं है, जिसके बल से गोस्वामी जी के रामचरितमानस का इतना देशव्यापी प्रचार हुआ। जीवन की परिस्थितियों की वह अनेकरूपता, गंभीरता और मर्मस्पर्शिता इसमें कहाँ जो रामचरित और तुलसी की वाणी में है? इसमें तो अधिकतर क्रीड़ामय जीवन का ही चित्रण है। फिर भी साधारण श्रेणी के कृष्णभक्त पाठकों में इसका प्रचार है। नीचे कुछ पद्य दिए जाते हैं,

कहति जसोदा कौन बिधि, समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं, ताहि कहत हरि खान
यहै देत नित माखन मोको। छिन छिन देति तात सो तोको
जो तुम श्याम चंद को खैहो। बहुरो फिर माखन कह पैहौ?
देखत रहौ खिलौना चंदा। हठ नहिं कीजै बालगोविंदा
पा लागौं हठ अधिक न कीजै। मैं बलि, रिसहि रिसहि तनछीजै।
जसुमति कहति कहा धौं कीजै। माँगत चंद कहाँ तें दीजै
तब जसुमति इक जलपुट लीनो। कर मैं लै तेहि ऊँचो कीनो

ऐसे कहि स्यामै बहरावै। आव चंद, तोहि लाल बुलावै
हाथ लिए तेहि खेलत रहिए। नैकु नहीं धारनी पै धारिए

28. गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव इन तीनों महानुभावों ने मिलकर हिन्दी साहित्य में बड़ा भारी काम किया है। इन्होंने समग्र महाभारत और हरिवंश (जो महाभारत का ही परिशिष्ट माना जाता है) का अनुवाद अत्यंत मनोहर विविधा छंदों में पूर्ण कवित्त के साथ किया है। कथाप्रबंध का इतना बड़ा काव्य हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं बना। यह लगभग दो हजार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इतना बड़ा ग्रंथ होने पर भी न तो इसमें कहीं शिथिलता आई है और न ही रोचकता और काव्यगुण में कमी हुई है। छंदों का विधान इन्होंने ठीक उसी रीति से किया है, जिस रीति से इतने बड़े ग्रंथ में होना चाहिए। जो छंद उठाया है उसका कुछ दूर तक निर्वाह किया है। केशवदास की तरह छंदों का तमाशा नहीं दिखाया है। छंदों का चुनाव भी बहुत उत्तम हुआ है। रूपमाला, घनाक्षरी, सवैया आदि मधुर छंद अधिक रखे गए हैं, बीच बीच में दोहे और चौपाइयाँ भी हैं। भाषा प्रांजल और सुव्यवस्थित है। अनुप्रास का अधिक आग्रह न होने पर भी आवश्यक विधान है। रचना सब प्रकार से साहित्यिक और मनोहर है और लेखकों की काव्य कुशलता का परिचय देती है। इस ग्रंथ के बनने में भी पचास वर्ष से ऊपर लगे हैं। अनुमानतः इसका आरंभ संवत् 1830 में हो चुका था और संवत् 1884 में जाकर समाप्त हुआ है। इसकी रचना काशी नरेश महाराज उदितनारायण सिंह की आज्ञा से हुई, जिन्होंने इसके लिए लाखों रुपये व्यय किए। इस बड़े भारी साहित्यिक यज्ञ के अनुष्ठान के लिए हिन्दी प्रेमी उक्त महाराज के सदा कृतज्ञ रहेंगे।

गोकुलनाथ और गोपीनाथ प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बंदीजन के पुत्र और पौत्र थे। मणिदेव बंदीजन भरतपुर राज्य के जहानपुर नामक गाँव के रहने वाले थे और अपनी विमाता के दुर्व्यवहार से रुष्ट होकर काशी चले आए थे। काशी में वे गोकुलनाथजी के यहाँ ही रहते थे और स्थानों पर भी उनका बहुत मान हुआ था। जीवन के अंतिम दिनों में वे कभी कभी विक्षिप्त भी हो जाया करते थे। उनका परलोकवास संवत् 1920 में हुआ।

गोकुलनाथ ने इस महाभारत के अतिरिक्त निम्नलिखित और भी ग्रंथ लिखे हैं,

चेतचंद्रिका, गोविंद सुखदविहार, राधाकृष्ण विलास, (संवत् 1858), राधानखशिख, नामरत्नमाला (कोश) (संवत् 1870), सीताराम गुणार्णव, अमरकोष भाषा (संवत् 1870), कविमुखमंडन।

चेतचंद्रिका अलंकार का ग्रंथ है, जिसमें काशिराज की वंशावली भी दी गई है। 'राधाकृष्ण विलास' रससंबंधी ग्रंथ है और 'जगतविनोद' के बराबर है। 'सीताराम गुणार्णव' अध्यात्म रामायण का अनुवाद है, जिसमें पूरी रामकथा वर्णित है। 'कविमुखमंडन' भी अलंकार संबंधी ग्रंथ है। गोकुलनाथ का कविताकाल संवत् 1840 से 1870 तक माना जा सकता है। ग्रंथों की सूची से यह स्पष्ट है कि ये कितने निपुण कवि थे। रीति और प्रबंध दोनों ओर इन्होंने प्रचुर रचना की है। इतने अधिक परिमाण में और इतने प्रकार की रचना वही कर सकता है, जो पूर्ण साहित्यमर्मज्ञ, काव्यकला में सिद्ध हस्त और भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाला हो। अतः महाभारत के तीनों अनुवादकों में तो ये श्रेष्ठ ही हैं, साहित्य के क्षेत्र में भी ये बहुत ऊँचे पद के अधिकारी हैं। रीतिग्रंथ रचना और प्रबंध रचना दोनों में समान रूप से कुशल और दूसरा कोई कवि रीतिकाल के भीतर नहीं पाया जाता।

महाभारत के जिस जिस अंश का अनुवाद जिसने किया है उस उस अंश में उसका नाम दिया हुआ है। नीचे तीनों कवियों की रचना के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं,

गोकुलनाथ

सखिन के श्रुति में उकुति कल कोकिलकी।
गुरुजन हू पै पुनि लाज के कथान की।
गोकुल अरुन चरनांबुज पै गुंजपुंज
धुनि सी चढ़ति चंचरीक चरचान की
पीतम के श्रवन समीप ही जुगुति होति
मैन मंत्र तंत्र सू बरन गुनगान की।
सौतिन के कानन में हलाहल हवै हलति,
एरी सुखदानि! तौ बजनि बिछुवान की

(राधाकृष्ण विलास)

दुर्ग अतिही महत रक्षित भटन सों चहुँ ओर।
ताहि घेरयो शाल्व भूपति सेन लै अति घोर
एक मानुष निकसिबे की रही कतहुँ न राह।
परी सेना शाल्व नृप की भरी जुद्ध उछाह

लहि सुदेष्णा की सुआज्ञा नीच कीचक जौन।
जाय सिंहिनि पास जंबुक तथा कीनी गौन
लग्यो कृष्णा सों कहन या भाँति सस्मित बैन।
यहाँ आई कहाँ तें? तुम कौन हौ छबि ऐन
नहीं तुम सी लखी भू पर भरी सुषमा बाम।
देवि, जच्छिनी, किन्नरी, कै श्री, सची अभिराम।
कांति सों अति भरी तुम्हरो लखन बदन अनूप।
करैगो नहिं स्वबस काको महा मन्मथ भूप

(महाभारत)

गोपीनाथ

सर्व दिसि में फिरत भीषम को सुरथ मन मान।
लखे सब कोउ तहाँ भूप अलातचक्र समान
सर्व थर सब रथिन सों तेहि समय नृप सब ओर।
एक भीषम सहस सम रन जुरो हो तहँ जोर

मणिदेव

बचन यह सुनि कहत भो चक्रांग हंस उदार।
उड़ौगे मम संग किमि तुम कहहु सो उपचार
खाय जूठो पुष्ट, गर्वित काग सुनि ये बैन।
कह्यौ जानत उड़न की शत रीति हम बल ऐन

29. बोधा ये राजापुर (जिला, बाँदा) के रहने वाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। पन्ना के दरबार में इनके संबंधियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसी संबंध से ये बाल्यकाल ही में पन्ना चले गए। इनका नाम बुद्धि सेन था, पर महाराज इन्हें प्यार से 'बोधा' कहने लगे और वही नाम इनका प्रसिद्ध हो गया, भाषाकाव्य के अतिरिक्त इन्हें संस्कृत और फारसी का भी अच्छा बोध था। शिवसिंहसरोज में इनका जन्म संवत् 1804 दिया हुआ है। इनका कविताकाल संवत् 1830 से 1860 तक माना जा सकताहै।

बोधा एक बड़े रसिक जीव थे। कहते हैं कि पन्ना के दरबार में सुभान (सुबहान) नाम की एक वेश्या थी जिस पर इनका प्रेम हो गया। इस पर रुष्ट होकर महाराज ने इन्हें छह महीने देशनिकाले का दंड दिया। सुभान के वियोग

में छह महीने इन्होंने बड़े कष्ट से बिताए और उसी बीच में 'विरहवारीश' नामक एक पुस्तक लिखकर तैयार की। छः महीने पीछे जब ये फिर दरबार में लौटकर आए तब अपने 'विरहवारीश' के कुछ कवित्त सुनाए। महाराज ने प्रसन्न होकर उनसे कुछ माँगने को कहा। इन्होंने कहा 'सुभान अल्लाह'। महाराज ने प्रसन्न होकर सुभान को इन्हें दे दिया और इनकी मुराद पूरी हुई।

शविरहवारीश' के अतिरिक्त 'इश्कनामा' भी इनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है। इनके बहुत से फुटकल कवित्त, सवैये, इधर-उधर पाए जाते हैं। बोधा एक रसोन्मत्त कवि थे, इससे इन्होंने कोई रीतिग्रंथ न लिखकर अपनी मौज के अनुसार फुटकल पद्यों की रचना की है। ये अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे। प्रेममार्ग के निरूपण में इन्होंने बहुत से पद्य कहे हैं। 'प्रेम की पीर' की व्यंजना भी इन्होंने बड़े मर्मस्पर्शिनी युक्ति से की है। यत्र-तत्र व्याकरण दोष रहने पर भी इनकी भाषा चलती और मुहावरेदार होती थी। उससे प्रेम की उमंग छलकी पड़ती है। इनके स्वभाव में फक्कड़पन भी कम नहीं था। 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाजारू ढंग की रचना भी इन्होंने कहीं कहीं की है। जो कुछ हो, ये भावुक और रसज्ञ कवि थे, इसमें कोई संदेह नहीं। कुछ पद्य इनके नीचे दिए जाते हैं,

अति खीन मृनाल के तारहु तें तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धाावनो है
एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटिए लखि कै मुसकाहट ताको
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै, नहिं जान मिलै तौ जहान कहाँ को
कबहूँ मिलिबो, कबहूँ मिलिबो, वह धीरज ही में धारैबो करै।
उर ते कढ़ि आवै, गरे ते फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै
कवि बोधा न चाँड़ सरी कबहूँ, नितही हरवा सो हिरैबो करै।
सहते ही बनै, कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबो करै
हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत,
हित को न जानै ताकौ हितू न विसाहिए।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु हवै चलै जो तासों लघुता निबाहिए

बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै,
आपको सराहै ताहि आपहू सराहिए।
दाता कहा, सूर कहा, सुंदर सुजान कहा,
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए

30. रामचंद्र इन्होंने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया है। भाषा महिम्न के कर्ता काशीवासी मनियारसिंह ने अपने को 'चाकर अखंडित श्री रामचंद्र पंडित के' लिखा है। मनियारसिंह ने अपना 'भाषा महिम्न' संवत् 1841 में लिखा। अतः इनका समय संवत् 1840 माना जा सकता है। इनकी एक पुस्तक 'चरणचंद्रिका' ज्ञात है। जिस पर इनका सारा यश स्थिर है। यह भक्तिरसात्मक ग्रंथ केवल 62 कवित्तों का है। इसमें पार्वतीजी के चरणों का वर्णन अत्यंत रुचिकर और अनूठे ढंग से किया गया है। इस वर्णन से अलौकिक सुषमा, विभूति, शक्ति और शांति फूटी पड़ती है। उपास्य के एक अंग में अनंत ऐश्वर्य की भावना भक्ति की चरम भावुकता के भीतर ही संभव है। भाषा लाक्षणिक और पांडित्यपूर्ण है। कुछ और अधिक न कहकर इनके दो कवित्त ही सामने रख देना ठीक है,

नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत,
मीन होत जानि चरनामृत झरनि को।
खंजन से नचौं देखि सुषमा सरद की सी,
सचौं मधुकर से पराग केसरनि को
रीझि रीझि तेरी पदछबि पै तिलोचन के
लोचन ये, अंब! धारैं केतिक धारनि को।
फूलत कुमुद से मयंक से निरखि नखय
पंकज से खिलै लखि तरवा तरनि को
मानिए करींद्र जो हरींद्र को सरोष हरै,
मानिए तिमिर घेरै भानु किरनन को।
मानिए चटक बाज जुर्रा को पटकि मारै,
मानिए झटकि डारै भेक भुजगन को
मानिए कहै, जो वारिधार पै दवारि औ
अंगार बरसाइबो बतावै बारिदन को।
मानिए अनेक विपरीत की प्रतीति, पै न
भीति आई मानिए भवानी – सेवकनको

31. मंचित ये मऊ (बुंदेलखंड) के रहने वाले ब्राह्मण थे और संवत् 1836 में वर्तमान थे। इन्होंने कृष्णचरित संबंधी दो पुस्तकें लिखी हैं, 'सुरभी दानलीला' और 'कृष्णायनश। सुरभी दानलीला में बाललीला, यमलार्जुन पतन और दानलीला का विस्तृत वर्णन सार छंद में किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण का नखशिख भी बहुत अच्छा कहा गया है। कृष्णायन तुलसीदास जी की 'रामायण' के अनुकरण पर दोहों चौपाइयों में लिखी गई है। इन्होंने गोस्वामी जी की पदावली तक का अनुकरण किया है। स्थान स्थान पर भाषा अनुप्रासयुक्त और संस्कृतगर्भित है, इससे ब्रजवासीदास की चौपाइयों की अपेक्षा इनकी चौपाइयाँ गोस्वामी जी की चौपाइयों से कुछ अधिक मेल खाती हैं। पर यह मेल केवल कहीं कहीं दिखाई पड़ जाता है। भाषा मर्मज्ञ को दोनों का भेद बहुत जल्दी स्पष्ट हो जाता है। इनकी भाषा ब्रज है, अवधी नहीं। उसमें वह सफाई और व्यवस्था कहाँ? कृष्णायन की अपेक्षा इनकी सुरभी दानलीला की रचना अधिक सरस है। दोनों से कुछ अवतरण नीचे दिए जाते हैं,

कुंडल लोल अमोल कान के छुवत कपोलन आवैं।
डुलै आपसे खुलैं जोर छबि बरबस मनहिं चुरावैं
खौर बिसाल भाल पर सोभित केसर की चित्तभावैं।
ताके बीच बिंदु रोरी के, ऐसो बेस बनावैं
भ्रुकुटी बंक नैन खंजन से कंजन गंजनवारे।
मदभंजन खग मीन सदा जे मनरंजन अनियारे
(सुरभी दानलीला)

अचरज अमित भयो लखि सरिता।
कृष्णदेव कहँ प्रिय जमुना सी।
अति विस्तार पार पद पावन।
बनचर बनज बिपुल बहु पच्छी।
नाना जिनिस जीव सरि सेवैं।

32. मधुसूदनदास ये माथुर चौबे थे। इन्होंने गोविंददास नामक किसी व्यक्ति के अनुरोध से संवत् 1839 में 'रामाश्वमेधा' नामक एक बड़ा और मनोहर प्रबंधकाव्य बनाया जो सब प्रकार से गोस्वामी जी के रामचरितमानस का परिशिष्ट ग्रंथ होने के योग्य है। इसमें श्रीरामचंद्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, घोड़े के साथ गई हुई सेना के साथ सुबाहु, दमन, विद्युन्माली

राक्षस, वीरमणि, शिव, सुरथ आदि का घोर युद्ध, अंत में राम के पुत्र लव और कुश के साथ भयंकर संग्राम, श्रीरामचंद्र द्वारा युद्ध का निवारण और पुत्रों सहित सीता का अयोध्या में आगमन, इन सब प्रसंगों का पद्मपुराण के आधार पर बहुत ही विस्तृत और रोचक वर्णन है। ग्रंथ की रचना बिल्कुल रामचरितमानस की शैली पर हुई है। प्रधानता दोहों के साथ चौपाइयों की है, पर बीच बीच में गीतिका आदि और छंद भी हैं। पदविन्यास और भाषासौष्ठव रामचरितमानस का सा ही है। प्रत्यय और रूप भी बहुत कुछ अवधी के रखे गए हैं। गोस्वामी जी की प्रणाली के उनसरण में मधूसूदनदासजी को पूरी सफलता हुई है। इनकी प्रबंधकुशलता, कवित्वशक्ति और भाषा की शिष्टता तीनों उच्चकोटि की हैं। इनकी चौपाइयाँ अलबत्ता गोस्वामी जी चौपाइयों में बेखटक मिलाई जा सकती हैं। सूक्ष्म दृष्टिवाले भाषामर्मज्ञों को केवल थोड़े ही से ऐसे स्थलों में भेद लक्षित हो सकता है जहाँ बोलचाल की भाषा होने के कारण भाषा का असली रूप अधिक स्फुटित है। ऐसे स्थलों पर गोस्वामी जी के अवधी के रूप और प्रत्यय न देखकर भेद का अनुभव हो सकता है। पर जैसा कहा जा चुका है, पदविन्यास की प्रौढ़ता और भाषा का सौष्ठव गोस्वामी जी के मेल का है।

सिय रघुपति पद कंज पुनीता।
मृदु मंजुल सुंदर सब भाँती।
प्रणत कल्पतरु तर सब ओरा।
त्रिविधा कलुष कुंजर घनघोरा।
चिंतामणि पारस सुरधोनू।
जन–मन मानस रसिक मराला।
निरखि कालजित कोपि अपारा।
महावेगयुत आवै सोई।
अयुत भार भरि भार प्रमाना।
देखि ताहि लव हनि इषु चंडा।
जिमि नभ माँह मेघ समुदाई।
तिमि प्रचंड सायक जनु ब्याला।
भए विकल अति पवन कुमारा।

33. मनियार सिंह ये काशी के रहने वाले क्षत्रिय थे। इन्होंने देवपक्ष में ही कविता की है और अच्छी की है। इनके निम्नलिखित ग्रंथों का पता है,

भाषा महिम्न, सौंदर्यलहरी (पार्वती या देवी की स्तुति), हनुमतछबीसी, सुंदरकांड। भाषा महिम्न इन्होंने संवत् 1841 में लिखा। इनकी भाषा सानुप्रास, शिष्ट और परिमार्जित है और उसमें ओज भी पूरा है। ये अच्छे कवि हो गए हैं। रचना के कुछ उदाहरण लीजिए,

मेरो चित्त कहाँ दीनता में अति दूबरो है,
अधरम धूमरो न सुधि के सँभारे पै।
कहाँ तेरी ऋद्धि कवि बुद्धि धारा ध्वनि तें,
त्रिगुण तें परे हवै दरसात निरधारे पै
मनियार यातें मति थकित जकित हवै कै,
भक्तिबस धारि उर धीरज बिचारे पै।
बिरची कृपाल वाक्यमाला या पुहुपदंत,
पूजन करन काज करन तिहारे पै
तेरे पद पंकज पराग राजै राजेश्वरी!
वेद बंदनीय बिरुदावली बढ़ी रहै।
जाकी किनुकाई पाय धाता ने धारित्री रची,
जापे लोक लोकन की रचना कढ़ी रहै।
मनियार जाहि विष्णु सेवैं सर्व पोषत में,
सेस ह्वै के सदा सीस सहस मढ़ी रहै।
सोई सुरासुर के सिरोमनि सदाशिव के,
भसम के रूप हवै सरीर पै चढ़ी रहै
अभय कठोर बानी सुनि लछमन जू की,
मारिबे को चाहि जो सुधारी खल तरवारि।
वीर हनुमंत तेहि गरजि सुहास करि,
उपटि पकरि ग्रीव भूमि लै परे पछारि।
पुच्छ तें लपेटि फेरि दंतन दरदराइ,
नखन बकोटि चोंथि देत महि डारि टारि।
उदर बिदारि मारि लुत्थन को टारि बीर,
जैसे मृगराज गजराज डारे फारि-फारि

34. कृष्णदास ये मिरजापुर के रहने वाले कोई कृष्णभक्त जान पड़ते हैं। इन्होंने संवत् 1853 में 'माधुर्य लहरी' नाम की एक बड़ी पुस्तक 420 पृष्ठों की बनाई जिसमें विविधा छंदों में कृष्णचरित का वर्णन किया गया है। कविता

इनकी साधारणत: अच्छी है। एक कविता देखिए,

कौन काज लाज ऐसी करै जो अकाज अहो,
बार बार कहो नरदेव कहाँ पाइए।
दुर्लभ समाज मिल्यो सकल सिद्धांत जानि,
लीला गुन नाम धाम रूप सेवा गाइए।
बानी की सयानी सब पानी में बहाय दीजै,
जानी, सो न रीति जासों दंपति रिझाइए।
जैसी जैसी गही जिन लही तैसी नैननहू,
धान्य धान्य राधाकृष्ण नित ही गनाइए

35. गणेश ये नरहरि बंदीजन के वंश में लाल कवि के पौत्र और गुलाब कवि के पुत्र थे। संवत् 1850 से लेकर 1910 तक वर्तमान थे। ये काशिराज महाराज उदितनारायण सिंह के दरबार में थे और महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के समय तक जीवित रहे। इन्होंने तीन ग्रंथ लिखे, (1) वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश (बालकांड समग्र और किषकिंधा के पाँच अध्याय), (2) प्रद्युम्न विजय नाटक,
(3) हनुमत पचीसी।

प्रद्युम्नविजय नाटक समग्र पद्यबद्ध है और अनेक प्रकार के छंदों में सात अंकों में समाप्त हुआ है। इसमें दैत्यों के वज्रनाभपुर नामक नगर में प्रद्युम्न के जाने और प्रभावती से गंधर्व विवाह होने की कथा है। यद्यपि इसमें पात्रप्रवेश, विष्कंभक, प्रवेशक आदि नाटक के अंग रखे गए हैं पर इतिवृत्त का भी वर्णन पद्य में होने के कारण नाटकत्व नहीं आया है। एक उदाहरण दिया जाता है,

ताही के उपरांत, कृष्ण इंद्र आवत भए।
भेंटि परस्पर कांत, बैठ सभासद मध्य तहँ
बोले हरि इंद्र सों बिनै कै कर जोरि दोऊ,
आजु दिगबिजय हमारे हाथ आयो है।
मेरे गुरु लोग सब तोषित भए हैं आजु,
पूरो तप, दान, भाग्य सफल सुहायो है
कारज समस्त सरे, मंदिर में आए आप,
देवन के देव मोहि धान्य ठहरायो है।
सो सुन पुरंदर उपेंद्र लखि आदर सों,
बोले सुनौ बंधु! दानवीर नाम पायो है

36. सम्मन ये मल्लावाँ (जिला हरदोई) के रहने वाले ब्राह्मण थे और संवत् 1834 में उत्पन्न हुए थे। इनके नीति के दोहे गिरधार की कुंडलिया के समान गाँवों तक में प्रसिद्ध हैं। इनके कहने के ढंग में कुछ मार्मिकता है। 'दिनों के फेर' आदि के संबंध में इनके मर्मस्पर्शी दोहे स्त्रियों के मुँह से बहुत सुने जाते हैं। इन्होंने संवत् 1879 में 'पिंगल काव्यभूषण' नामक एक रीतिग्रंथ भी बनाया। पर ये अधिकतर अपने दोहों के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इनका रचनाकाल संवत् 1860 से 1880 तक माना जा सकता है। कुछ दोहे देखिए,

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या संसार में, प्रीति करौ जनि कोय
सम्मन चहौ सुख देह कौ तौ छाँड़ौ ये चारि।
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नारि
सम्मन मीठी बात सों होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर

37. ठाकुर, इस नाम के तीन कवि हो गए हैं जिसमें दो असनी के ब्रह्मभट्ट थे और एक बुंदेलखंड के कायस्थ। तीनों की कविताएँ ऐसी मिल-जुल गई हैं कि भेद करना कठिन है। हाँ, बुंदेलखंडी ठाकुर की वे कविताएँ पहचानी जा सकती हैं, जिनमें बुंदेलखंडी कहावतें या मुहावरे आए हैं।

असनी वाले प्राचीन ठाकुर

ये रीतिकाल के आरंभ में संवत् 1700 के लगभग हुए थे। इनका कुछ वृत्त नहीं मिलताय केवल फुटकल कविताएँ इधर उधर पाई जाती हैं। संभव है, इन्होंने रीतिबद्ध रचना न करके अपने मन की उमंग के अनुसार समयसमय पर कवित्त सवैये बनाए हों जो चलती और स्वच्छ भाषा में हैं। इनके ये दो सवैये बहुत सुने जाते हैं,

सजि सूहे दुकूलन बिज्जुछटा सी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं।
सुचिती हवै सुनैं धुनि मोरन की, रसमाती संयोग सँजोवति हैं
कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसैं, हम आँसुन सों तन धोवति हैं।
धानि वै धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगि सोवतिहैं
बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजन भौरन भीर चुपैबो चहै ना

सीतल मंद सुगंधित, बीर समीर लगे तन धीर रहै ना।
व्याकुल कीन्हों बसंत बनाय कै, जाय कै कंत सों कोऊ कहै ना

असनी वाले दूसरे ठाकुर

ये ऋषिनाथ कवि के पुत्र और सेवक कवि के पितामह थे। सेवक के भतीजे श्रीकृष्ण ने अपने पूर्वजों का जो वर्णन लिखा है, उसके अनुसार ऋषिनाथजी के पूर्वज देवकीनंदन मिश्र गोरखपुर जिले के एक कुलीन सरयूपारी ब्राह्मणा, पयासी के मिश्र थे, और अच्छी कविता करते थे। एक बार मँझौली के राजा के यहाँ विवाह के अवसर पर देवकीनंदन जी ने भाटों की तरह कुछ कवित्त पढ़े और पुरस्कार लिया। इस पर उनके भाई-बन्धुओं ने उन्हें जातिच्युत कर दिया और वे असनी के भाट नरहर कवि की कन्या के साथ अपना विवाह करके असनी में जा रहे और भाट हो गए। उन्हीं देवकीनंदन के वंश में ठाकुर के पिता ऋषिनाथ कवि हुए।

ठाकुर ने संवत् 1861 में 'सतसई बरनार्थ' नाम की 'बिहारी सतसई' की एक टीका (देवकीनंदन टीका) बनाई। अतः इनका कविताकाल संवत् 1860 के इधरउधर माना जा सकता है। ये काशिराज के संबंधी काशी के नामी रईस (जिनकी हवेली अब तक प्रसिद्ध है) बाबू देवकीनंदन के आश्रित थे। इनका विशेष वृत्तांत स्व. पं. अंबिकादत्त व्यास ने अपने 'बिहारी बिहार' की भूमिका में दिया है। ये ठाकुर भी बड़ी सरस कविता करते थे। इनके पद्यों में भाव या दृश्य का निर्वाह अबाध रूप में पाया जाता है। दो उदाहरण लीजिए,

कारे लाज करहे पलासन के पुंज तिन्हैं
अपने झकोरन झुलावन लगी है री।
ताही को ससेटी तृन पत्रन लपेटी धारा,
धाम तैं अकास धूरि धावन लगी है री
ठाकुर कहत सुचि सौरभ प्रकाशन मों
आछी भाँति रुचि उपजावन लगी है री।
ताती सीरी बैहर बियोग वा संयोगवारी,
आवनि बसंत की जनावन लगी है री
प्रात झुकामुकि भेष छपाय कै गागर लै घर तें निकरी ती।
जानि परी न कितीक अबार है, जाय परी जहँ होरी धारी ती

ठाकुर दौरि परे मोहिं देखि कै, भागि बची री, बड़ी सुघरी ती।
बीर की सौं जो किवार न देऊँ तौ मैं होरिहारन हाथ परी तीघ

तीसरे ठाकुर बुंदेलखंडी

ये जाति के कायस्थ थे और इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके पूर्वज काकोरी (जिला, लखनऊ) के रहने वाले थे और इनके पितामह खड्गरायजी बड़े भारी मंसबदार थे। उनके पुत्र गुलाबराय का विवाह बड़ी धूमधाम से ओरछे (बुंदेलखंड) के रावराजा (जो महाराज ओरछा के मुसाहब थे) की पुत्री के साथ हुआ था। ये ही गुलाबराय ठाकुर कवि के पिता थे। किसी कारण से गुलाबराय अपनी ससुराल ओरछे में ही आ बसे जहाँ संवत् 1823 में ठाकुर का जन्म हुआ। शिक्षा समाप्त होने पर ठाकुर अच्छे कवि निकले और जैतपुर में सम्मान पाकर रहने लगे। उस समय जैतपुर के राजा केसरी सिंहजी थे। ठाकुर के कुल के कुछ लोग बिजावर में भी जा बसे थे। इससे ये कभी वहाँ भी रहा करते थे। बिजावर के राजा ने एक गाँव देकर ठाकुर का सम्मान किया। जैतपुर नरेश राजा केसरी सिंह के उपरांत जब उनके पुत्र राजा पारीछत गद्दी पर बैठे तब ठाकुर उनकी सभा के रत्न हुए। ठाकुर की ख्याति उसी समय से फैलने लगी और वे बुंदेलखंड के दूसरे राजदरबारों में भी आने जाने लगे। बाँदा के हिम्मतबहादुर गोसाईं के दरबार में कभी-कभी पद्माकरजी के साथ ठाकुर की कुछ नोंक झोंक की बातें हो जाया करती थीं। एक बार पद्माकरजी ने कहा, 'ठाकुर कविता तो अच्छी करते हैं पर पद कुछ हल्के पड़ते हैं।' इस पर ठाकुर बोले, 'तभी तो हमारी कविता उड़ी उड़ी फिरती है।'

इतिहास में प्रसिद्ध है कि हिम्मतबहादुर कभी अपनी सेना के साथ अंग्रेजों का कार्य साधन करते थे और कभी लखनऊ के नवाब के पक्ष में लड़ते। एक बार हिम्मतबहादुर ने राजा पारीछत के साथ कुछ धोखा करने के लिए उन्हें बाँदे बुलाया। राजा पारीछत वहाँ जा रहे थे कि मार्ग में ठाकुर कवि मिले और दो ऐसे संकेत भरे सवैये पढ़े कि राजा पारीछत लौट गए। एक सवैया यह है,

कैसे सुचित्त भए निकसौ बिहँसौ बिलसौ हरि दै गलबाहीं।
ये छल छिद्रन की बतियाँ छलती छिन एक घरी पल माहीं
ठाकुर वै जुरि एक भई, रचिहैं परपंच कछू ब्रज माहीं।
हाल चवाइन की दुहचाल की लाल तुम्हें है दिखात कि नाहीं

कहते हैं कि यह हाल सुनकर हिम्मतबहादुर ने ठाकुर को अपने दरबार में बुला भेजा। बुलाने का कारण समझकर भी ठाकुर बेधाड़क चले गए। जब हिम्मतबहादुर इन पर झल्लाने लगे तब इन्होंने यह कवित्त पढ़ा,

वेई नर निर्नय निदान में सराहे जात,
सुखन अघात प्याला प्रेम को पिए रहैं।
हरि रस चंदन चढ़ाय अंग अंगन में,
नीति को तिलक, बेंदी जस की दिए रहैं।
ठाकुर कहत मंजु कंजु ते मृदुल मन,
मोहनी सरूप, धारे, हिम्मत हिए रहैं।
भेंट भए समये असमये, अचाहे चाहे,
और लौं निबाहैं, ऑखैं एकसी किए रहैं

इस पर हिम्मतबहादुर ने जब कुछ और कटु वचन कहा तब सुना जाता है कि ठाकुर ने म्यान से तलवार निकाल ली और बोले,

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीत देनवारे हैं मही के महीपालन को,
हिए के विसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के

हिम्मतबहादुर यह सुनते ही चुप हो गए। फिर मुस्कारते हुए बोले, 'कविजी बस! मैं तो यही देखना चाहता था कि आप कोरे कवि ही हैं या पुरखों की हिम्मत भी आप में है।' इस पर ठाकुर जी ने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया, 'महाराज! हिम्मततो हमारे ऊपर सदा अनूप रूप से बलिहार रही है, आज हिम्मत कैसे गिर जाएगी?' (गोसाई हिम्मत गिरि का असल नाम अनूप गिरि था, हिम्मतबहादुर शाही खिताबथा।)

ठाकुर कवि का परलोकवास संवत् 1880 के लगभग हुआ। अत: इनका कविताकाल संवत् 1850 से 1880 तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक अच्छा संग्रह 'ठाकुर ठसक' के नाम से श्रीयुत् लाला भगवानदीनजी ने निकाला है। पर इसमें भी दूसरे दो ठाकुर की कविताएँ मिली हुई हैं। इस संग्रह

में विशेषता यह है कि कवि का जीवनवृत्त भी कुछ दे दिया गया है। ठाकुर के पुत्र दरियाव सिंह (चतुर) और पौत्र शंकरप्रसाद भी कवि थे।

ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडंबर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। जैसे भावों का जिस ढंग से मनुष्य मात्र अनुभव करते हैं वैसे भावों को उसी ढंग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में भाव को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है। ब्रजभाषा कीशृंगारी कविताएँ प्राय: स्त्री पात्रों के ही मुख की वाणी होती हैं अत: स्थान स्थान पर लोकोक्तियों का जो मनोहर विधान इस कवि ने किया उनसे उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है। यह एक अनुभूत बात है कि स्त्रियाँ बात बात में कहावतें कहा करती हैं। उनके हृदय के भावों की भरपूर व्यंजना के लिए ये कहावतें मानो एक संचित वाङ्मय हैं। लोकोक्तियों का जैसा मधुर उपयोग ठाकुर ने किया है वैसा और किसी कवि ने नहीं। इन कहावतों में से कुछ तो सर्वत्र प्रचलित हैं और कुछ खास बुंदेलखंड की हैं। ठाकुर सच्चे उदार, भावुक और हृदय के पारखी कवि थे इसी से इनकी कविताएँ विशेषत: सवैये इतने लोकप्रिय हुए। ऐसा स्वच्छंद कवि किसी क्रम से बद्ध होकर कविता करना भला कहाँ पसंद करता? जब जिस विषय पर जी में आया कुछ कहा।

ठाकुर प्रधानत: प्रेमनिरूपक होने पर भी लोक व्यापार के अनेकांगदर्शी कवि थे। इसी से प्रेमभाव की अपनी स्वाभाविक तन्मयता के अतिरिक्त कभी तो ये अखती, फाग, बसंत, होली, हिंडोरा आदि उत्सवों के उल्लास में मग्न दिखाई पड़ते हैं, कभी लोगों की क्षुद्रता, कुटिलता, दुरूशीलता आदि पर क्षोभ प्रकट करते पाए जाते हैं और कभी काल की गति पर खिन्न और उदास देखे जाते हैं। कविकर्म को ये कठिन समझते थे। रूढ़ि के अनुसार शब्दों की लड़ी जोड़ चलने को ये कविता नहीं कहते थे। नमूने के लिए यहाँ इनके थोड़े ही से पद्य दिए जाते हैं,

सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीन्हों जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधोनु चिंतामनि,
सीखि लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,

याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है
दस बार, बीस बार, बरजि दई है जाहि,
एतै पै न मानै जौ तौ जरन बरन देव।
कैसो कहा कीजै कछू आपनो करो न होय,
जाके जैसे दिन ताहि तैसेई भरन देव।
ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखो,
प्रेम निहसंक रसरंग बिहरन देव।
बिधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव
अपने अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री!
अंगनान में भीजत प्रेमभरे, समयो लखि मैं बलि जाऊँ पै री!
कहै ठाकुर दोउन की रुचि सो रंग हवै उमड़े दोउ ठाँव पै री।
सखी, कारी घटा बरसे बरसाने पै, गोरी घटा नंदगाँव पै री
वा निरमोहिनी रूप की रासि जऊ उर हेतु न ठानति हवै है।
बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति हवै है
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेहु न मानति हवै है।
आवत हैं नित मेरे लिए, इतनी तो विसेष कै जानति हवै है
यह चारहु ओर उदौ मुखचंद की चाँदनी चारु निहारि लै री।
बलि जौ पै अधीन भयो पिय, प्यारी! तौ एतौ बिचार बिचारि लैरी
कबि ठाकुर चूकि गयो जौ गोपाल तौ तैं बिगरी कौं सभारि लै री।
अब रैहै न रैहै यहै समयो, बहती नदी पाँय पखारि लै री
पावस में परदेस ते आय मिले पिय औ मनभाई भई है।
दादुर मोर पपीहरा बोलतय ता पर आनि घटा उनई हैघ
ठाकुर वा सुखकारी सुहावनी दामिनी कौंधा कितै को गई है।
री अब तौ घनघोर घटा गरजौ बरसौ तुम्हैं धूर दई है
पिय प्यार करैं जेहि पै सजनी तेहि की सब भाँतिन सैयत है।
मन मान करौं तौ परौं भ्रम में, फिर पाछे परे पछतैयत है
कवि ठाकुर कौन की कासौं कहौं? दिन देखि दसा बिसरैयत है।
अपने अटके सुन ए री भटू! निज सौत के मायके जैयत है

40. नवलसिंह कायस्थ, ये झाँसी के रहने वाले थे और समथर नरेश राजा हिंदूपति की सेवा में रहते थे। इन्होंने बहुत से ग्रंथों की रचना की है, जो भिन्नभिन्न विषयों पर और भिन्न भिन्न शैली के हैं। ये अच्छे चित्रकार भी थे। इनका झुकाव भक्ति और ज्ञान की ओर विशेष था। इनके लिखे ग्रंथों के नाम ये हैं,

रासपंचाध्यायी, रामचंद्रविलास, शंकामोचन (संवत् 1873), जौहरिनतरंग (1875), रसिकरंजनी (1877), विज्ञान भास्कर (1878), ब्रजदीपिका (1883), शुकरंभासंवाद (1888), नामचिंतामणि (1903), मूलभारत (1911), भारतसावित्री (1912), भारत कवितावली (1913), भाषा सप्तशती (1917), कवि जीवन (1918), आल्हा रामायण (1922), रुक्मिणीमंगल (1925), मूल ढोला (1925), रहस लावनी (1926), अध्यात्मरामायण, रूपक रामायण, नारी प्रकरण, सीतास्वयंबर, रामविवाहखंड, भारत वार्तिक, रामायण सुमिरनी, पूर्व शृंगारखंड, मिथिलाखंड, दानलोभसंवाद, जन्म खंड।

उक्त पुस्तकों में यद्यपि अधिकांश बहुत छोटी हैं फिर भी इनकी रचना बहुरूपता का आभास देती है। इनकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुई हैं। अतः इनकी रचना के संबंध में विस्तृत और निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। खोज की रिपोर्टों में उद्धृत उदाहरणों के देखने से रचना इनकी पुष्ट और अभ्यस्त प्रतीत होती है। ब्रजभाषा में कुछ वार्तिक या गद्य भी इन्होंने लिखा है। इनके कुछ पद्य नीचे देखिए,

अभव अनादि अनंत अपारा। अमन, अप्रान, अमर, अविकारा
अग अनीह आतम अबिनासी। अगम अगोचर अबिरल वासी
अकथनीय अद्वैत अरामा। अमल असेष अकर्म अकामा
सगुन सरूप सदा सुषमा निधान मंजु,
बुद्धि गुन गुनन अगाधा बनपति से।
भनै नवलेस फैल्यो बिशद मही में यस,
बरनि न पावै पार झार फनपति से
जक्त निज भक्तन के कलषु प्रभंजै रंजै,
सुमति बढ़ावै धान धान धानपति से।
अवर न दूजो देव सहस प्रसिद्ध यह,
सिद्धि बरदैन सिद्ध ईस गनपति से

41. रामसहाय दास, ये चौबेपुर (जिला, बनारस) के रहने वाले लाला भवानीदास कायस्थ के पुत्र थे और काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रय में रहते थे। 'बिहारी सतसई' के अनुकरण पर इन्होंने 'रामसतसई' बनाई। बिहारी के अनुकरण पर बनी हुई पुस्तकों में इसी को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसके बहुत से दोहे सरस उद्‌भावना में बिहारी के दोहों के पास तक पहुँचते हैं, पर यह कहना कि ये दोहे बिहारी के दोहों में मिलाए जा सकते हैं, रसज्ञता और भावुकता से ही पुरानी दुश्मनी निकालना ही नहीं, बिहारी को भी कुछ नीचे गिराने का प्रयत्न समझा जाएगा। बिहारी में क्या-क्या मुख्य विशेषताएँ हैं यह उनके प्रसंग में दिखाया जा चुका है। जहाँ तक शब्दों की कारीगरी और वाग्वैदग्ध्य से संबंध है वहीं तक अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है और सफलता भी हुई है। पर हावों का वह सुंदर व्यंजना विधान, चेष्टाओं का वह मनोहर चित्रण, भाषा का वह सौष्ठव, संचारियों की वहसुंदर व्यंजना इस सतसई में कहाँ? नकल ऊपरी बातों की हो सकती है, हृदय की नहीं, पर हृदय पहचानने के लिए हृदय चाहिए, चेहरे पर की दो ऑखों से ही काम नहीं चल सकता। इस बड़े भारी भेद के होते हुए भी 'रामसतसई'श्रृंगार रस का उत्तम ग्रंथ है इस सतसई के अतिरिक्त इन्होंने तीन पुस्तकें और लिखी हैं,

वाणीभूषण, वृत्ततरंगिणी (संवत्‌ 1873) और ककहरा।

वाणीभूषण अलंकार का ग्रंथ है और वृत्ततरंगिणी पिंगल का। ककहरा जायसीकीश्अखरावट' के ढंग की छोटी सी पुस्तक है और शायद सबसे पिछली रचना है, क्योंकि इसमें धर्म और नीति के उपदेश हैं। रामसहाय का कविताकाल संवत् 1760से 1880 तक माना जा सकता है। नीचे सतसई के कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं,

गड़े नुकीले लाल के नैन रहैं दिन रैनि।
तब नाजुक ठोढ़ी न क्यों गाड़ परै मृदुबैनि
भटक न, झटपट चटक कै अटक सुनट के संग।
लटक पीतपट की निपट हटकति कटक अनंग
लागे नैना नैन में कियो कहा धौ मैन।
नहिं लागै नैना रहैं लागे नैना नैन
गुलुफनि लगि ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिर न फिरयो मुरवान चपि, चित अति खात मरोर

यौ बिभाति दसनावली ललना बदन मँझार।
पति को नातो मानि कै मनु आई उडुमार

42. चंद्रशेखर ये वाजपेयी थे। इनका जन्म संवत् 1855 में मुअज्जमाबाद (जिला, फतेहपुर) में हुआ था। इनके पिता मनीरामजी भी अच्छे कवि थे। ये कुछ दिनों तक दरभंगे की ओर, फिर 6 वर्ष तक जोधपुर नरेश महाराज मानसिंह के यहाँ रहे। अंत में ये पटियाला नरेश महाराज कर्मसिंह के यहाँ गए और जीवन भर पटियाला में ही रहे। इनका देहांत संवत् 1932 में हुआ। अत: ये महाराज नरेंद्रसिंह के समय तक वर्तमान थे और उन्हीं के आदेश से इन्होंने अपना प्रसिद्ध वीरकाव्य 'हम्मीरहठ' बनाया। इसके अतिरिक्त इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं,

विवेकविलास, रसिकविनोद, हरिभक्तिविलास, नखशिख, वृंदावनशतक, गृहपंचाशिका, ताजकज्योतिष, माधावी वसंत।

यद्यपि शृंगार की कविता करने में भी ये बहुत ही प्रवीण थे पर इनकी कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए 'हम्मीरहठ' ही पर्याप्त है। उत्साह के, उमंग की व्यंजना जैसी चलती स्वाभाविक और जोरदार भाषा में इन्होंने की है उस प्रकार से करने में बहुत ही कम कवि समर्थ हुए हैं। वीररस के वर्णन में इस कवि ने बहुत ही सुंदर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है। सूदन आदि के समान शब्दों की तड़ातड़ और भड़ाभड़ के फेर में न पड़कर उग्रोत्साह व्यंजक उक्तियों का ही अधिक सहारा इस कवि ने लिया है, जो वीर रस की जान है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि वर्णनों के अनावश्यक विस्तार को जिसमें वस्तुओं की बड़ी लंबीचौड़ी सूची भरी जाती है, स्थान नहीं दिया गया है। सारांश यह है कि वीररस वर्णन की श्रेष्ठ प्रणाली का अनुसरण चंद्रशेखर जी ने किया है।

रही प्रसंगविधान की बात। इस विषय में कवि ने नई उद्भावनाएँ न करके पूर्ववर्ती कवियों का ही सर्वथा अनुसरण किया है। एक रूपवती और निपुण स्त्री के साथ महिमा मंगोल का अलाउद्दीन के दरबार से भागना, अलाउद्दीन का उसे हम्मीर से वापस माँगना, हम्मीर का उसे अपनी शरण में लेने के कारण उपेक्षापूर्वक इनकार करना, ये सब बातें जोधाराज क्या उसके पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की ही कल्पना है, जो वीरगाथाकाल की रूढ़ि के अनुसार की गई थी। गढ़ के घेरे के समय गढ़पति की निश्चतता और निर्भीकता व्यंजित करने के लिए पुराने कवि गढ़ के भीतर नाचरंग का होना दिखाया करते थे। जायसी ने अपने

पद्मावत में अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौरगढ़ के घेरे जाने पर राजा रतनसेन का गढ़ के भीतर नाच कराना और शत्रु के फेंके हुए तीर से नर्तकी का घायल होकर मरना वर्णित किया है। ठीक उसी प्रकार का वर्णन 'हम्मीरहठ' में रखा गया है। यह चंद्रशेखर की अपनी उद्भावना नहीं, एक बँधी हुई परिपाटी का अनुसरण है। नर्तकी के मारे जाने पर हम्मीरदेव का यह कह उठना कि 'हठ करि मंडयो युद्ध वृथा ही' केवल उनके तात्कालिक शोक के आधिक्य की व्यंजना मात्र करता है। उसे करुण प्रलाप मात्र समझना चाहिए। इसी दृष्टि से इस प्रकरण के करुण प्रलाप राम ऐसे सत्यसंध और वीरव्रती नायकों से भी कराए गए हैं। इनके द्वारा उनके चरित्र में कुछ भी लांछन लगता हुआ नहीं माना जाता।

एक त्रुटि हम्मीरहठ की अवश्य खटकती है। सब अच्छे कवियों ने प्रतिनायक के प्रताप और पराक्रम की प्रशंसा द्वारा उससे भिड़ने वाले या उसे जीतनेवाले नायकके प्रताप और पराक्रम की व्यंजना की है। राम का प्रतिनायक रावण कैसा था?इंद्र, मरुत, यम, सूर्य आदि सब देवताओं से सेवा लेनेवालाय पर हम्मीरहठ में अलाउद्दीनएक चुहिया के कोने में दौड़ने से डर के मारे उछल भागता है और पुकार मचाता है।

चंद्रशेखर का साहित्यिक भाषा पर बड़ा भारी अधिकार था। अनुप्रास की योजना प्रचुर होने पर भी भद्दी कहीं नहीं हुई, सर्वत्र रस में सहायक ही है। युद्ध, मृगया आदि के वर्णन तथा संवाद आदि सब बड़ी मर्मज्ञता से रखे गए हैं। जिस रस का वर्णन है ठीक उसके अनुकूल पदविन्यास है। जहाँशृंगार का प्रसंग है वहाँ यही प्रतीत होता है कि किसी सर्वश्रेष्ठशृंगारी कवि की रचना पढ़ रहे हैं। तात्पर्य यह है कि 'हम्मीरहठ' हिन्दी साहित्य का एक रत्न है। 'तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़ै न दूजी बार' वाक्य ऐसे ही ग्रंथ में शोभा देता है। आगे कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

उदै भानु पच्छिम प्रतच्छ, दिन चंद प्रकासै।
उलटि गंग बरु बहै, काम रति प्रीति विनासै
तजै गौरि अरधांग, अचल धा्रुव आसन चल्लै।
अचल पवन बरु होय, मेरु मंदर गिरिहल्लै
सुरतरु सुखाय, लोमस मरै, मीर! संक सब परिहरौ।
मुखबचन बीर हम्मीर को बोलि न यह कबहूँटरौ
आलम नेवाज सिरताज पातसाहन के
गाज ते दराज कोप नजर तिहारी है।

जाके डर डिगत अडोल गढ़धारी डग
मगत पहार औ डुलति महि सारी है
रंक जैसो रहत ससंकित सुरेस भयो,
देस देसपति में अतंक अति भारी है।
भारी गढ़धारी, सदा जंग की तयारी,
धाक मानै ना तिहारी या हमीर हठधाारी है
भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागे गज बाजि रथ पथ न सँभारैं, परैं
गोलन पै गोल, सूर सहमि सकाय कै
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि,
बलित बितुंड पै विराजि बिलखाय कै
जैसे लगे जंगल में ग्रीषम की आगि
चलै भागि मृग महिष बराह बिललाय कै
थोरी थोरी बैसवारी नवल किसोरी सबै,
भोरी भोरी बातन बिहँसि मुख मोरतीं।
बसन बिभूषन बिराजत बिमल वर,
मदन मरोरनि तरकि तन तोरतीं
प्यारे पातसाह के परम अनुराग रँगी,
चाय भरी चायल चपल दृग जोरतीं।
कामअबला सी, कलाधार की कला सी,
चारु चंपक लता सी चपला सी चित्त चोरतीं

43. बाबा दीनदयाल गिरि, ये गोसाईं थे। इनका जन्म शुक्रवार वसंतपंचमी, संवत् 1859 में काशी के गाय घाट मुहल्ले में एक पाठक के कुल में हुआ था। जब ये 5 या 6 वर्ष के थे तभी इनके माता पिता इन्हें महंत कुशागिरि को सौंप चल बसे। महंत कुशागिरि पंचक्रोशी के मार्ग में पड़ने वाले देहली विनायक स्थान के अधिकारी थे। काशी में महंतजी के और भी कई मठ थे। ये विशेषत: गायघाट वाले मठ में रहा करते थे। जब महंत कुशागिरि के मरने पर बहुत सी जायदाद नीलाम हो गई तब ये देहली विनायक के पास मठोली गाँव वाले मठ में रहने लगे। बाबाजी संस्कृत और हिन्दी दोनों के अच्छे विद्वान थे। बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) से इनका बड़ा स्नेह

था। इनका परलोकवास संवत् 1915 में हुआ। ये एक अत्यंत सहृदय और भावुक कवि थे। इनकी सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की नहीं हुई। यद्यपि इन अन्योक्तियों के भाव अधिकांश संस्कृत से लिये हुए हैं, पर भाषा शैली की सरसता और पदविन्यास की मनोहरता के विचार से वे स्वतंत्र काव्य के रूप में हैं। बाबा जी का भाषा पर बहुत ही अच्छा अधिकार था। इनकी सी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित भाषा बहुत थोड़े कवियों की है। कहीं कहीं कुछ पूरबीपन या अव्यवस्थित वाक्य मिलते हैं, पर बहुत कम। इसी से इनकी अन्योक्तियाँ इतनी मर्मस्पर्शिनी हुई हैं। इनका 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' हिन्दी साहित्य में एक अनमोल वस्तु है। अन्योक्ति के क्षेत्र में कवि की मार्मिकता और सौंदर्य भावना के स्फुरण का बहुत अच्छा अवकाश रहता है। पर इसमें अच्छे भावुक कवि ही सफल हो सकते हैं। लौकिक विषयों पर तो इन्होंने सरल अन्योक्तियाँ कही ही हैं, अध्यात्मपक्ष में भी दो-एक रहस्यमयी उक्तियाँ इनकी हैं।

बाबाजी का जैसा कोमल व्यंजक पदविन्यास पर अधिकार था वैसा ही शब्द चमत्कार आदि के विधान पर भी। यमक और श्लेषमयी रचना भी इन्होंने बहुत सी की है। जिस प्रकार ये अपनी भावुकता हमारे सामने रखते हैं उसी प्रकार चमत्कार कौशल दिखाने में भी नहीं चूकते हैं। इससे जल्दी नहीं कहते बनता कि इनमें कलापक्ष प्रधान है या हृदयपक्ष। बड़ी अच्छी बात इनमें यह है कि इन्होंने दोनों को प्रायः अलग अलग रखा है। अपनी मार्मिक रचनाओं के भीतर इन्होंने चमत्कार प्रवृत्ति का प्रवेश प्रायः नहीं होने दिया है। 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' के आदि में कई श्लिष्ट पद्य आए हैं पर बीच में बहुत कम। इसी प्रकार अनुरागबाग में भी अधिकांश रचना शब्दवैचित्रय आदि से मुक्त है। यद्यपि अनुप्रासयुक्त सरस कोमल पदावली का बराबर व्यवहार हुआ है, पर जहाँ चमत्कार का प्रधान उद्देश्य रखकर ये बैठे हैं वहाँ श्लेष, यमक, अंतर्लापिका, बहिर्लापिका सब कुछ मौजूद है। सारांश यह कि ये एक बहुरंगी कवि थे। रचना की विविधा प्रणालियों पर इनका पूर्ण अधिकार था।

इनकी लिखी इतनी पुस्तकों का पता है,

अन्योक्तिकल्पद्रुम (संवत् 1912), अनुरागबाग (संवत् 1888), वैराग्य दिनेश (संवत् 1906), विश्वनाथ नवरत्न और दृष्टांत तरंगिणी (संवत् 1879)।

इस सूची के अनुसार इनका कविताकाल संवत् 1879 से 1912 तक माना जा सकता है। 'अनुरागबाग' में श्रीकृष्ण की विविधा लीलाओं का बड़े ही ललित

कवित्तों में वर्णन हुआ है। मालिनीछंद का भी बड़ा मधुर प्रयोग हुआ है। 'दृष्टांत तरंगिणी' में नीतिसंबंधी दोहे हैं। 'विश्वनाथ नवरत्न' शिव की स्तुति है। 'वैराग्य दिनेश' में एक ओर तो ऋतुओं आदि की शोभा का वर्णन है और दूसरी ओर ज्ञान, वैराग्य आदि का। इनकी कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

केतो सोम कला करौ, करौ सुधा को दान।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान
यह तेलिया पखान, बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी
बरनै दीनदयाल, चंद! तुमही चित चेतौ।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजे केतौ
बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहिं।
यह तौ ऊसर भूमि है अंकुर जमिहैं नाहिं
अंकुर जमिहैं नाहिं बरष सत जौ जल दैहै।
गरजै तरजै कहा? बृथा तेरो श्रम जैहै
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक! ह्याँ तू बरखै
चल चकई तेहि सर विषै, जहँ नहिं रैन बिछोह।
रहत एक रस दिवस ही, सुहृद हंस संदोह।
सुहृद हंस संदोह कोह अरु द्रोह न जाको।
भोगत सुख अंबोह, मोह दुख होय न ताको
बरनै दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई।
पिय मिलाप नित रहै, ताहि सर तू चल चकई
कोमल मनोहर मधुर सुरताल सने
नूपुर निनादनि सों कौन दिन बोलिहैं।
नीके मन ही के वृंद वृंदन सुमोतिन को
गहि कै कृपा की अब चोंचन सो तौलिहैं
नेम धारि छेम सों प्रमुद होय दीनद्याल
प्रेम कोकनद बीच कब धौं कलोलिहैं।
चरन तिहारे जदुबंस राजहंस! कब
मेरे मन मानस में मंद मंद डोलिहैं
चरन कमल राजैं, मंजु मंजीर बाजैं।

गमन लखि लजावैं, हंसऊ नाहिं पावैं
सुखद कदमछाहीं, क्रीड़ते कुंज माहीं।
लखि लखि हरि सोभा, चित्त काको न लोभा
बहु छुद्रन के मिलन तें हानि बली की नाहिं।
जूथ जंबुकन तें नहीं केहरि कहुँ नसि जाहिं
पराधीनता दुख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै कनक पींजरे दीन

44. पजनेस, ये पन्ना के रहने वाले थे। इनका कुछ विशेष वृत्तांत प्राप्त नहीं। कविताकाल इनका संवत् 1900 के आसपास माना जा सकता है। कोई पुस्तक तो इनकी नहीं मिलती, पर इनकी बहुत सी फुटकल कविता संग्रह ग्रंथों में मिलती और लोगों के मुँह से सुनी जाती है। इनका स्थान ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों में है। ठाकुर शिवसिंहजी ने 'मधुरप्रिया' और 'नखशिख' नाम की इनकी दो पुस्तकों का उल्लेख किया है, पर वे मिलती नहीं। भारतजीवन प्रेस ने इनकी फुटकल कविताओं का एक संग्रह 'पजनेस प्रकाश' के नाम से प्रकाशित किया है, जिसमें 127 कवित्त-सवैया हैं। इनकी कविताओं को देखने से पता चलता है कि ये फारसी भी जानते थे। एक सवैया में इन्होंने फारसी के शब्द और वाक्य भरे हैं। इनकी रचना शृंगार रस की ही है, पर उसमें कठोर वर्णों (जैसे ट, ठ, ड) का व्यवहार यत्र तत्र बराबर मिलता है। ये 'प्रतिकूलवर्णन' की परवाह कम करते थे। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि कोमल अनुप्रासयुक्त ललित भाषा का व्यवहार इनमें नहीं है। पदविन्यास इनका अच्छा है। इनके फुटकल कवित्त अधिकतर अंगवर्णन के मिलते हैं, जिससे अनुमान होता है कि इन्होंने कोई नखशिख लिखा होगा। शब्द चमत्कार पर इनका ध्यान विशेष रहता था जिससे कहीं कहीं कुछ भद्दापन आ जाता था। कुछ नमूने देखिए,

छहरै छबीली छटा छूटि छितिमंडल पै,
उमग उजेरो महाओज उजबक सी।
कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात,
उपमाधिकाति कल कुंदन तबक सी
फैली दीप दीप दीप दीपति दीपति जाकी।
दीपमालिका की रही दीपति दबक सी।
परत न ताब लखि मुख माहताब जब,

निकसी सिताब आफताब की भभक सी
पजनेस तसद्दुक ता बिसमिल जुल्फष फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुनाँ बदमस्त सनम अजश्दस्त अलाबल जुल्फ फँसे
मजमूए, न काफष् शिगाफष् रुए सम क्यामत चश्म से खूँ बरसे।
मिजश्गाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुकते, बिन बे, किन ते, किन से

45. गिरिधरदास ये भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के पिता थे और ब्रजभाषा के बहुत ही प्रौढ़ कवि थे। इनका नाम तो बाबू गोपालचंद्र था पर कविता में अपना उपनाम ये 'गिरिधरदास', 'गिरधार', 'गिरिधरन' रखते थे। भारतेंदु ने इनके संबंध में लिखा है कि 'जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रंथ चालीसश। इनका जन्म पौष कृष्ण 15, संवत् 1890 को हुआ। इनके पिता काले हर्षचंद, जो काशी के एक बड़े प्रतिष्ठित रईस थे इन्हें ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही छोड़कर परलोक सिधाारे। इन्होंने अपनेनिज के परिश्रम से संस्कृत और हिन्दी में बड़ी स्थिर योग्यता प्राप्त की और पुस्तकों काएक बहुत बड़ा अनमोल संग्रह किया। पुस्तकालय का नाम इन्होंने 'सरस्वती भवन' रखा जिसका मूल्य स्वर्गीय डॉ. राजेंद्र लाल मित्र एक लाख रुपया तक दिलवाते थे। इनके यहाँ उस समय के विद्वानों और कवियों की मंडली बराबर जमी रहती थी और इनका समय अधिकतर काव्यचर्चा में ही जाता था। इनका परलोकवास संवत् 1917 में हुआ।

भारतेंदुजी ने इनके लिखे 40 ग्रंथों का उल्लेख किया है, जिनमें बहुतों का पता नहीं। भारतेंदु के दौहित्र, हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक श्रीयुत् बाबू ब्रजरत्नदासजी हैं जिन्होंने अपनी देखी हुई इन अठारह पुस्तकों के नाम इस प्रकार दिए हैं,

जरासंधवध महाकाव्य, भारतीभूषण (अलंकार), भाषा व्याकरण (पिंगल संबंधी), रसरत्नाकर, ग्रीष्म वर्णन, मत्स्यकथामृत, वराहकथामृत, नृसिंहकथामृत, वामनकथामृत, परशुरामकथामृत, रामकथामृत, बलराम कथामृत, कृष्णचरित (4701 पदों में), बुद्ध कथामृत, कल्किकथामृत, नहुष नाटक, गर्गसंहिता, (कृष्णचरित का दोहे चौपाइयों में बड़ा ग्रंथ), एकादशी माहात्म्य।

इनके अतिरिक्त भारतेंदुजी के एक नोट के आधार पर स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने इनकी 21 और पुस्तकों का उल्लेख किया है,

वाल्मीकि रामायण (सातों कांड पद्यानुवाद), छंदार्णव, नीति, अद्भुत रामायण, लक्ष्मीनखशिख, वार्ता संस्कृत, ककारादिसहस्रनाम, गयायात्र, गयाष्टक,

द्वादशदलकमल, कीर्तन, संकर्षणाष्टक, दनुजारिस्रोत, गोपालस्रोत, भगवतस्रोत, शिवस्रोत, श्री रामस्रोत, श्री राधास्रोत, रामाष्टक, कालियकालाष्टक।

इन्होंने दो ढंग की रचनाएँ की हैं। गर्गसंहिता आदि भक्तिमार्ग की कथाएँ तो सरल और साधारण पद्यों में कही हैं, पर काव्य कौशल की दृष्टि से जो रचनाएँ की हैं जैसे जरासंधवध, भारतीभूषण, रसरत्नाकर, ग्रीष्मवर्णन, ये यमक और अनुप्रास आदि से इतनी लदी हुई हैं कि बहुत स्थलों पर दुरूह हो गई हैं। सबसे अधिक इन्होंने यमक और अनुप्रास का चमत्कार दिखाया है। अनुप्रास और यमक का ऐसा विधान जैसा जरासंधावध में है और कहीं नहीं मिलेगा। जरासंधवध अपूर्ण है, केवल 11 सर्गों तक लिखा गया है, पर अपने ढंग का अनूठा है। जो कविताएँ देखी गई हैं उनसे यही धारणा होती है कि इनका झुकाव चमत्कार की ओर अधिक था। रसात्मकता इनकी रचनाओं में वैसी नहीं पाई जाती। अट्ठाइस वर्ष की ही आयु पाकर इतनी अधिक पुस्तकें लिख डालना पद्य रचना का अद्‌भुत अभ्यास सूचित करता है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं।

(जरासंध वध से)

चल्यो दरद जेहि फरद रच्यो बिधि मित्र दरद हर।
सरद सरोरुह बदन जाचकन बरद मरद बर
लसत सिंह सम दुरद नरद दिसि दुरद अरद कर।
निरखि होत अरि सरद, हरद, सम जरद कांति धार
कर करद करत बेपरद जब गरद मिलत बपु गाज को।
रन जुआ नरद वित नृप लस्यो करद मगध महराज को
सबके सब केशव के सबके हित के गज सोहते सोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरैं सैलन सैलहि सीस प्रहार हैं
श्गिरिधरन' धारन सों पद कंज लै धारन लै बसु धारन फारहैं
अरि बारन बारन बारन पै सुर वारन वारन वारन वार हैं

(भारती भूषण से)

असंगति, सिंधु जनित गर हर पियो, मरे असुर समुदाय।
नैन बान नैनन लग्यो, भयो करेजे घाय

(रसरत्नाकर से)

जाहि बिबाहि दियो पितु मातु नै पावक साखि सबै जन जानी।
साहब से 'गिरिधरन जू' भगवान समान कहै मुनि ज्ञानी

तू जो कहै वह दच्छिन है तो हमैं कहा बाम हैं, बाम अजानी।
भागन सों पति ऐसो मिलै सबहीन को दच्छिन जो सुखदानी

(ग्रीष्मवर्णन से)

जगह जड़ाऊ जामे जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग में जमति है।
जामे जदुजानि जान प्यारी जातरूप ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्ह सी जगति है
श्गिरिधरदास' जोर जबर जवानी को है,
जोहि जोहि जलजा हू जीव में जकति है।
जगत के जीवन के जिय को चुराए जोय,
जोए जोषिता को जेठ जरनि जरति है

46. द्विजदेव (महाराज मानसिंह) ये अयोध्या के महाराज थे और बड़ी ही सरस कविता करते थे। ऋतुओं के वर्णन इनके बहुत ही मनोहर हैं। इनके भतीजे भुवनेश जी (श्री त्रिलोकीनाथ जी, जिनसे अयोध्या नरेश ददुआ साहब से राज्य के लिए अदालत हुई थी) ने द्विजदेव जी की दो पुस्तकें बताई हैं, 'श्रृंगारबत्तीसी' और 'श्रृंगारलतिका।'श्रृंगारलतिका' का एक बहुत ही विशाल और सटीक संस्करण महारानी अयोध्या की ओर से हाल में प्रकाशित हुआ है। इसके टीकाकार हैं भूतपूर्व अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह। 'श्रृंगारबत्तीसी' भी एक बार छपी थी। द्विजदेव के कवित्त काव्यप्रेमियों में वैसे ही प्रसिद्ध हैं जैसे पद्माकर के। ब्रजभाषा केश्रृंगारी कवियों की परंपरा में इन्हें अंतिम प्रसिद्ध कवि समझना चाहिए। जिस प्रकार लक्षण ग्रंथ लिखने वाले कवियों में पद्माकर अंतिम प्रसिद्ध कवि हैं उसी प्रकार समूचीश्रृंगार परंपरा में ये। इनकी सी सरस और भावमयी फुटकल श्रृंगारी कविता फिर दुर्लभ हो गई।

इनमें बड़ा भारी गुण है भाषा की स्वच्छता। अनुप्रास आदि चमत्कारों के लिए इन्होंने भाषा भद्दी कहीं नहीं होने दी है। ऋतुवर्णनों में इनके हृदय का उल्लास उमड़ पड़ता है। बहुत से कवियों के ऋतुवर्णन हृदय की सच्ची उमंग का पता नहीं देते, रस्म सी अदा करते जान पड़ते हैं। पर इनके चकोरों की चहक के भीतर इनके मन की चहक भी साफ झलकती है। एक ऋतु के उपरांत दूसरी ऋतु के आगमन पर इनका हृदय अगवानी के लिए मानो आप से आप आगे बढ़ता था। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं,

मिलि माधावी आदिक फूल के ब्याज विनोद-लवा बरसायो करैं।
रचि नाच लतागन तानि बितान सबै विधि चित्त चुरायो करैं।
द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा अलिचारन कीरति गायो करैं।
चिरजीवो बसंत! सदा द्विजदेव प्रसूननि की झरि लायो करैं
सुर ही के भार सूधो सबद सुकीरन के
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
द्विजदेव त्यौं ही मधुभारन अपारन सों
नेकु झुकि झूमि रहै मोगरे मरुअ दौन
खोलि इन नैनन निहारौं तौ निहारौं कहा?
सुषमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद,
गंधा ही के भारन बहत मंद मंद पौन
बोलि हारे कोकिल, बुलाय हारे केकीगन,
सिखै हारी सखी सब जुगुति नई नई।
द्विजदेव की सौं लाज बैरिन कुसंग इन
अंगन हू आपने अनीति इतनी ठई
हाय इन कुंजन तें पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन समै में दुखदाइनि भई री लाज,
चलत समैं में चल पलन दगा दई
आजु सुभायन ही गई बाग, बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि।
ताहि समय तहँ आये गोपाल, तिन्हें लखि औरौ गयो हियरो ठगि
पै द्विजदेव न जानि परयो धौं कहा तेहि काल परे अंसुवा जगि।
तू जो कही सखि! लोनो सरूप सो मो अंखियान कों लोनी गईलगि
बाँके संकहीने राते कंज छबि छीने माते,
झुकि झुकि, झूमि झूमि काहू को कछू गनैन।
द्विजदेव की सौं ऐसी बनक बनाय बहु,
भाँतिन बगारे चित चाहन चहूँधा चौन
पेखि परे प्रात जौ पै गातिन उछाह भरे,
बार बार तातें तुम्हैं बूझती कछूक बैन।
एहो ब्रजराज! मेरो प्रेमधान लूटिबे को,

बीरा खाय आये कितै आपके अनोखे नैन
भूले भूले भौंर बन भाँवरें भरैंगे चहूँ,
फूलि फूलि किंसुक जके से रहि जायहैं।
द्विजदेव की सौं वह कूजन बिसारि कूर,
कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछिताय हैं
आवत बसंत के न ऐहैं, जो पै स्याम तौ पै,
बावरी! बलाय सों हमारेऊ उपाय हैं।
पीहैं पहिलेई तें हलाहल मँगाय या,
कलानिधि की एकौ कला चलन न पायहैं
घहरि घहरि घन सघन चहूँधा घेरि,
छहरि छहरि विष बूँद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं अब चूक मत दाँव, एरे
पातकी पपीहा! तू पिया की धुनि गावै ना।
फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ, एरे
मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तौ बिन प्रान, प्रान चाहत तजोई अब,
कत नभ चंद तू अकास चढ़ि धावै ना

2

रीतिबद्ध काव्य

रीतिकाल में काव्यांगविवेचन के अंतर्गत 'रीतिग्रंथप्रणयन' की बहुलता के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रीतिनिरूपण' को इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में रेखांकित किया है। इसी आधार पर उन्होंने रीतिकाल-नामकरण किया। वे अध्ययन की सुविधा के लिए रीतिकाल के उपविभाजन का सुसंगत और प्रामाणिक आधार तलाश रहे थे, "किसी कालविस्तार को लेकर यों ही पूर्व और उत्तर नाम देकर दो हिस्से कर डालना ऐतिहासिक विभाग नहीं कहला सकता। जब तक पूर्व और उत्तर के अलग-अलग लक्षण नहीं बतलाए जाएँगे, तब तक इस प्रकार के विभाग का कोई अर्थ नहीं। रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध की जो परंपरा चली है उसका उपविभाग करने का संगत आधार मुझे नहीं मिला। रचना के स्वरूप आदि में कोई स्पष्ट भेद निरूपित किए बिना विभाग कैसे किया जा सकता है?" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण का वक्तव्य, पृ.8) जाहिर है उपविभाजन का संगत आधार नहीं मिलने के कारण शुक्ल जी ने रीतिबद्धता का आधार अपनाने वाले रीतिकाल के सभी कवियों (चाहे रीतिग्रंथों का प्रणयन किया हो या न किया हो) को एक ही वर्ग में रखा और उन्हें 'रीतिग्रंथकार कवि' के रूप में स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त उस समय-सीमा में आने वाले रीतीतर कवियों को उन्होंने 'अन्य कवि' की श्रेणी में रखा। अपने इस विभाजन से शुक्ल जी संभवतः संतुष्ट नहीं थे और और इस कारण वे रीतिबद्ध कवियों की आंतरिक परिधि में समान प्रवृत्तियों के आधार पर उनका

उपविभाजन करने के दिशा में प्रयत्नशील थे, पर यह संभव नहीं हुआ, "रीतिबद्ध ग्रंथों की बहुत गहरी छानबीन और सूक्ष्म पर्यालोचना करने पर आगे चलकर शायद विभाग का कोई आधार मिल जाए, पर अभी तक मुझे नहीं मिला है।" (वही, पृ.8) रीतिकालीन काव्यरचना की मूल प्रवृत्ति और विशेषताओं के आधार पर उन कवियों का वर्गीकरण किए जाने में यद्यपि तकनीकी रूप से एक बड़ी कठिनाई है, जिसका उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट रूप से किया है, "थोड़े-थोड़े अंतर पर होने वाले कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम पर अनेक काल बाँध चलने के पहले यह दिखाना आवश्यक है कि प्रत्येक कालप्रवर्तक कवि का यह प्रभाव उसके काल में होने वाले सब कवियों में सामान्य रूप से पाया जाता है। विभाग का कोई पुष्ट आधार होना चाहिए।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.8) उपविभाजन के संबंध में शुक्लजी जैसे आलोचक का इतना संकेत पर्याप्त था, परिणाम स्वरूप परवर्ती अनेक विद्वानों ने इसके लिए तलाश आरंभ की और 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ' की तर्ज पर इस दिशा में पर्याप्त मंथन कर डाला। रीतिकाल के नामकरण और उपविभाजन की दिशा में क्रिया-प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ मौलिक-अमौलिक दिखाई देता है, उसके पीछे शुक्ल जी द्वारा किए गए उक्त संकेत की विशिष्ट भूमिका है।

रीतिकाल की समयसीमा में जो काव्यरचना हो रही थी, उसके भीतर यदि रीतीतर स्वछंद कवियों को छोड़ दिया जाए, तो शेष कवियों के काव्य रचना की मूल प्रवृत्ति कमोबेश काव्यांगविवेचन के क्रम में रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथ रचना के साथ-साथ उन्हीं रीतियों के आधार पर शृंगारपरक काव्यसर्जन की कही जा सकती है। कवियों की दृष्टि लक्षण और उदाहरण के माध्यम से रीतियुक्त शृंगारिक काव्याभिव्यक्ति पर टिकी है। हाँ, अंतर इतना है कि जिन कवियों ने लक्षण और उदाहरण दोनों के माध्यम से रचना की है, उनका काव्यसर्जन लक्षणग्रंथों में व्यक्त हुआ है और जिन्होंने लक्षण नहीं लिखे, उनके यहाँ उदाहरण बहुत व्यापक रूप में मिल जाएँगे, वह भी स्वतंत्र रूप से बिना किसी लक्षणग्रंथरचना के। इस पार्थक्य के कारण ही विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सरीखे विद्वान् रीतिबद्ध का आंतरिक उपविभाजन करने का आग्रह करते हैं और काव्य रचना के इस व्यापक प्रयास को रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध के रूप में स्वीकार करते हैं।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र जिस 'शृंगारकाल' के लिए बहुत जाने-पहचाने जाते हैं, वह शृंगारकाल शुक्लजी के संकेत में पहले से मौजूद है। मिश्रजी द्वारा

रीतिनिरूपक सभी कवियों को रितिबद्ध श्रेणी में स्वीकार करना तथा रीतितर कवियों के लिए रीतिमुक्त जैसा विभाजन भी शुक्लजी द्वारा रीतिबद्धता का बार-बार उल्लेख करने तथा रीतिकाल के अन्य कवि जैसे वर्गीकरण से प्रेरित है। रीतीतर कवियों के लिए अन्य कवि, रीतिमुक्त कवि, स्वछंद कवि आदि कहने के बावजूद उनके विभाजन पर कोई विशेष विवाद नहीं है। कठिनाई रीतिबद्ध श्रेणी को लेकर है। शुक्लजी जिन्हें रीतिग्रंथकार के रूप में रीतिबद्ध की श्रेणी में रखते हैं, मिश्रजी भी उन्हें पहले रीतिबद्ध (रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथ-रचना करने वाले तथा लक्षणग्रंथ रचना के बिना ही रीतिनिरूपण का ध्यान रखकर रचना करने वाले, दोनों को) के रूप में रखते हैं, बाद में रीतिबद्ध का वे उपविभाजन करते हुए उन्हें –

(i) रीतिनद्ध (ii) रीतिसिद्ध के अंतर्गत रखने का आग्रह करते हैं। वस्तुतः किंचित् हेरफेर के साथ मोटे तौर पर विश्वनाथप्रसाद मिश्र के रीतिकालीन कवियों का विभाजन रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त के रूप में माना जाता है।

लक्षणग्रंथ रचना वैविध्य के आधार पर डॉ.नगेंद्र ऐसे कवियों, जिन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और विश्वनाथप्रसाद मिश्र क्रमशः रीतिग्रंथकार कवि एवं रीतिबद्ध कहते हैं, को आचार्य कवि की श्रेणी में रखते हैं तथा उनका आंतरिक उपविभाजन भी करते हैं, पर उनके आचार्य होने का खंडन शुक्लजी पूर्व में ही कर चुके थे, "हिन्दी में लक्षणग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए हैं, वे आचार्य की कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्य के गुण नहीं थे। उनके अपर्याप्त लक्षण साहित्यशास्त्र का सम्यक् बोध कराने में असमर्थ हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.181) लक्षणग्रंथ रचना के बिना ही रीतिनिरूपण का ध्यान रखकर रचना करने वाले कवि डॉ. नगेंद्र की दृष्टि में रीतिबद्ध कवि हैं, क्योंकि बिना कोई लक्षणग्रंथ रचे वे रीतियों से पूरी तरह बँधे हुए हैं। ध्यातव्य है, मिश्रजी जिन्हें रीतिसिद्ध कवि कहते हैं, डॉ.नगेंद्र उन्हें रीतिबद्ध कवि की श्रेणी में रखते हैं।

रीतिकालीन कवियों के ये सारे विभाजन-उपविभाजन संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यमीमांशा जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता राजशेखर (880 ई.-925 ई.) द्वारा किए गए कवियों के विभाजन से प्रेरित-प्रभावित होकर किए गए प्रतीत होते हैं। राजशेखर ने कवियों की मुख्य तीन श्रेणियाँ निर्धारित की हैं तथा उनके अनेक आंतरिक उपविभाजन भी किए हैं– (1)शास्त्र कवि (2) काव्य कवि (3) उभय कवि या शस्त्र कवि ("शास्त्रकवि काव्यकवि उभयकविश्चेति कवयस्त्रिधा।"

काव्यमीमांशा, पाँचवाँ अध्याय) कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ. नगेंद्र ने रीतिबद्ध कवियों की की जो दो श्रेणियाँ, आचार्य कवि, काव्य कवि, के रूप में निर्धारित की हैं, वह राजशेखर के विभाजन का ही अनुकरण है। आगे भी उन्होंने आचार्य कवियों की जो श्रेणियाँ, सर्वांगनिरूपक, रसनिरूपक, अलंकारनिरूपक, पिंगलनिरूपक, के रूप में निर्धारित की हैं, उस पर भी राजशेखर के उपविभाजन ("त्रिधा शास्त्रकवि–यरू शास्त्रं विधत्ते, यश्च शास्त्रे काव्यं विधत्ते, यौपि काव्ये शास्त्रर्थ विधत्ते।") की पूरी छाया व्याप्त है। व्यापक विचारविमर्श और वाद-विवाद के पश्चात् रीतिकालीन कवियों की तीन श्रेणियाँ स्वीकार कर ली गई हैं– (i) रीतिबद्ध (ii) रीतिसिद्ध (ii) रीतिमुक्त। रीतिकाल के कवियों का यह विभाजन उनकी अलग-अलग विशेषताओं के आधार पर किया गया है, "वस्तुतः लक्षणशास्त्रबद्ध रचयिता शास्त्र कवि अथवा रीतिबद्ध कवि हैं, लक्षणशास्त्रमुक्त कवि काव्य कवि या रीतिमुक्त कवि हैं तथा लक्षणशास्त्र-बद्ध न होकर भी विभिन्न काव्यांगों का परोक्ष विवेचन प्रस्तुत करने वाला कवि उभय कवि अथवा रीतिसिद्ध कवि होता है।" (लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.203) इसी विभाजन के आधार यहाँ रीतिकालीन कविता की रीतबद्ध काव्यधारा का सामान्य परिचय अपेक्षित है।

रीतिबद्ध काव्य

रीतिकाल में काव्यरचना का सर्वाधिक व्यापक प्रभाव रीतिबद्ध कवियों का है। इस काव्यधारा के कवियों की मूल और प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारपरक रचनाओं को विविध रूपों में प्रस्तुत करना है। रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों के माध्यम से काव्य के समस्त अंगों-उपांगों को स्पष्ट करने के लिए लक्षणों और उदाहरणों के माध्यम से काव्यमय अभिव्यक्ति करते हुए हिन्दी कविता का जैसे प्रसार एवं विकास इन कवियों ने किया है, वह आश्चर्यजनक रूप से चामत्कारिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है। काव्यरचना की परंपरागत पद्धति अथवा रीति का अनुसरण करने के कारण वे रीतिबद्ध कवि कहे जाते हैं। वे स्वयं को काव्यरचना के लिए परंपरा से प्राप्त रीति अथवा पंथ को स्वीकार कर रचना करने वाला कवि मानते हैं, जिससे उनके काव्यरचना की परंपराबद्ध रीति से रचनाकर्म में प्रवृत होने का स्पष्ट संकेत मिलता है–"रीति सुभाषा कवित की वरनत बुध अनुसार।" (चिन्तामणि)"सुकविन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथ।" (भूषण) "अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीत।" (देव)

"काव्य की रीति सिख्यौ सुकवीन्ह सों। " (भिखारीदास)

इस काव्यधारा के कवियों नें काव्य रचना-रीति का निर्वाह करते हुए व्यापक काव्यसर्जन का पथ प्रशस्त किया, जिस पर चलते हुए रीतिकाल के अनेक कवियों ने रीतिबद्ध काव्यधारा के विकास में अपना योगदान दिया। इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में आचार्य केशवदास, चिन्तामणि, मंडन, महाराजा जशवंत सिंह, मतिराम, भूषण, कुलपति मिश्र, देवदत्त, श्रीपति मिश्र, भिखारीदास, सेनापति, रसलीन, सोमनाथ, प्रतापसिंह, पद्माकर, ग्वालकवि आदि के नाम विशेष रूप से सम्मिलित हैं।

1. रीतिबद्धता और रीतिकाव्य

काव्यरचना के लिए काव्यशास्त्रीय परंपरा एवं पद्धति का निर्वाह करते हुए रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों की रचना करने वाले शास्त्रबद्ध आचार्य कवि रीतिबद्ध काव्यधार का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस काव्यधारा के कवि काव्यरचना के नियमों में बँधकर अपने कविकर्म का दायित्व निर्वहन करते हैं। वे परंपरागत रीति से बँधीबँधाई परिपाटी पर काव्यरचना करने वाले कवि हैं, जिन्हें रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत स्थान दिया गया है। इस धारा के आचार्य कवियों ने अलंकारनिरूपण, रसनिरूपण, नायिकाभेदनिरूपण आदि की सुदृढ़ और व्यापक परंपरा हिन्दी में स्थापित की, जो संस्कृत काव्यशास्त्रीय संप्रदायों से प्रेरित होने के बावजूद हिन्दी में एक नवीन काव्यपरंपरा की सूचक थी। संस्कृत में तो पहले से ही रस, ध्वनि, अलंकार संप्रदायों की विवेचना करने वाले लक्षणग्रंथों में रसनिरूपण, अलंकारनिरूपण, तथा नायक-नायिका भेद आदि का विस्तृत और व्यापक विवेचन विद्यमान था, जिनसे प्रेरणा लेकर रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियों ने हिन्दी में यह परंपरा आरंभ की। हाँ, रीतिबद्ध कवि संस्कृत आचार्यों से इस दृष्टि से भिन्न थे कि जहाँ संस्कृत के आचार्य काव्यांगनिरूपण में लक्षणों का निर्माण करते और उदाहरण किसी अन्य प्रसिद्ध कवि का उद्धृत करते हुए उन लक्षणों को स्पष्ट करते थे, हिन्दी के रीतिबद्ध कवि रीतिनिरूपण में लक्षणों का निर्माण करने के उपरांत उन्हें स्पष्ट करने के लिए स्वयं द्वारा रचित काव्यमय उदाहरण भी देते थे। अपने स्वयं के काव्य-उदाहरणों से लक्षणों को स्पष्ट करने के कारण वे संस्कृत आचार्यों से कदाचित् अलग हो जाते हैं।

जहाँ संस्कृत में आचार्य और कवि अलग-अलग हुआ करते थे, वहीं हिन्दी में आचार्य और कवि दोनों एक ही व्यक्ति होता था। इससे आचार्यत्व और

काव्यत्व दोनों के समन्वय और संतुलन के साथ काव्यत्व का उच्च स्तर भी बना रहे, यह असंभव नहीं तो, दुष्करसाध्य अवश्य है। हालाँकि संस्कृत में दंडी, जयदेव, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ के नाम इस दिशा में अपवादस्वरूप हैं, जिन्होंने आचार्यत्व और काव्यत्व दोनों का उत्कृष्ट निर्वाह किया है, पर हिन्दी के रीतिबद्ध कवियों में ऐसा उदाहरण विरल ही है। रीतिकाल के कवियों में आचार्य और कवि दोनों एक ही व्यक्ति के होने का परिणाम उत्कृष्ट काव्य रचना की दृष्टि से बहुत संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता, "संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे। हिन्दी काव्य क्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया। इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कवि कर्म में प्रवृत हो जाते थे। काव्यांग का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नए-नए सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतहास, पृ.181)

यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि जो उच्चकोटि का आचार्य हो, वह उच्चकोटि का कवि भी होगा, या जो उच्चकोटि का कवि हो, वह उसी कोटि का आचार्य भी होगा, तथापि हिन्दी की रीतिबद्ध काव्यपरंपरा के आचार्य कवियों को इन दोनों धर्मों (आचार्य धर्म और कवि धर्म) का निर्वाह करना पड़ता था। ऐसा करते समय आचार्यत्व और काव्यत्व दोनों में संतुलन बनाकर उत्कृष्ट काव्सर्जन निरूसंदेह एक चुनौती भरा कार्य कहा जा सकता है, क्योंकि आचार्यत्व श्रेष्ठ होने पर लक्षण उत्कृष्ट हो जाते हैं, उदाहरण अपेक्षया निम्नतर। दूसरी ओर काव्यप्रतिभा श्रेष्ठ होने से उदाहरण श्रेष्ठ होने की संभावना अधिक होती है, लक्षण के उत्तम होने में संदेह बना रहता है। हाँ, जो दोनों का सामंजस्य और संतुलन बिठा ले, तो ऐसे कवि के लिए मणि-कांचन संयोग कहा जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य कवियों की काव्यप्रतिभा लक्षणों में प्रकट हुई है, तो इससे इतर कवियों की काव्यप्रतिभा उदाहरणों में अपना सर्वोत्कृष्ट रूप अभिव्यक्त कर सकी है। प्रथम के प्रमुख उदाहरण केशवदास, चिन्तामणि, भिखारीदास, मतिराम और भूषण हैं, तो द्वितीय के बिहारी, देव और पद्माकर कहे जा सकते हैं, जिनमें एक सीमा तक आचार्यत्व और काव्यत्व का संतुलन देखा जा सकता है। कतिपय रीतिबद्ध कवियों में आचार्यत्व एवं काव्यत्व दोनों का समन्वय और

संतुलन दृष्टिगत होता है, जिसे रीतिकाल की एक उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

2. रीतिकाल और रीतिबद्ध काव्य

रीतिकाल में रचित रीतिबद्ध काव्य का स्वरूप बहुत व्यापक है। परिस्थिति और परिवेश के अनुरूप एक बँधीबँधाई परिपाटी पर परंपरागत काव्य रचना पद्धति के अनुकरण में शृंगारपरक रचनाओं का अधिकाधिक सर्जन इस काल की सामान्य प्रवृत्ति कही जा सकती है। राजाश्रय में रहते हुए दरबार की अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं के अनुरूप चमत्कारपूर्ण कलात्मक काव्याभिव्यक्ति करना इस काल के कवियों के लिए अनिवार्य सा हो गया था। यही कारण है कि कविगण अपने ज्ञान और पांडित्य को काव्यरचना के माध्यम से प्रस्तुत करना अपना साहित्यिक धर्म समझने लगे थे। परिणामत: काव्यशास्त्रीय प्रभाव में काव्यरचना की एक नवीन और अनूठी प्रवृत्ति रीतिकाल में विकसित हो गई, जो संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा में रचित कतिपय प्रमुख लक्षणग्रंथों के अनुकरण में भले ही सामने आई हो, पर हिन्दी के लिए वह नि:संदेह काव्यरचना की नूतन पद्धति कही जा सकती है। यहाँ भगीरथ मिश्र की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है–"रीतिकाव्य की परंपरा ने शुद्ध काव्य के लिए मार्ग खोल दिया। रीतिकालीन साहित्य में पुरानी परंपरा से हटकर कुछ नवीनता का समावेश हुआ।"

रीतिकाल में काव्यरचना की इस नवीन प्रवृत्ति में काव्यांगविवेचन के अंतर्गत रीतिनिरूपण करने वाले लक्षणग्रंथों के माध्यम से व्यक्त इस प्रकार की रचनाओं को रीतिबद्ध काव्य की संज्ञा दी गई। रीतिबद्धता के क्रम में काव्यांगों के पद्यमय लक्षण और उदाहरण, नायिकाभेद पर काव्यमय विस्तृत विवेचन, बिना लक्षणग्रंथ रचे लक्षणों को ध्यान में रखकर उदाहरण के रूप में उत्कृष्ट काव्यसर्जन का प्रयास इस काल में जिस तरह दिखाई देता है, वह रीतिबद्ध काव्यरचना का व्यापक विस्तार करता है। काव्य के विविध अंगों-उपांगों का बहुत सूक्ष्म वर्णन इस काल की काव्यरचना की प्रमुख विशेषता है। रीतिकाल की रीतिबद्ध काव्यरचना के विषय में भगीरथ मिश्र की टिप्पणी विचारणीय है–"उसे रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि आदि के वर्णन के सहारे अपनी काव्य प्रतिभा दिखाना आवश्यक था। इस युग में उदाहरणों पर विचार होते थे। इस बात पर कि उसमें कौन सा अलंकार है ? कौन सी शब्दशक्ति है ? कौन सा रस या भाव है ? उसमें वर्णित नायिका किस भेद के अंतर्गत है ? काव्य

की टीकाओं और व्याख्यानों में काव्य सौंदर्य को स्पष्ट करने के लिए भी उसके भीतर अलंकार, रस, नायिकाभेद को स्पष्ट किया जाता था। कविगोष्ठियों में भी यही प्रवृत्ति थी। अतः यह युग रीति-पद्धति का ही युग था और इसमें इससे संबंधित असंख्य ग्रंथ लिखे गए।" ऐसे अगणित ग्रंथों के माध्यम से काव्य रचना का जो विस्तृत फलक रीतिकाल में निर्मित होता है, उससे रीतिकाव्य का स्वरूप बहुत व्यापक और विविधवर्णी दिखाई देता है। रसविषयक वर्णनों, नायिकाभेद विषयक रचनाओं एवं अन्य शृंगारपरक काव्यसर्जन में इस काल के कवियों का काव्यचारुत्व एवं काव्य कौशल बहुत उत्कृष्ट कहा जा सकता है।

रीतिकाल में रीतिबद्ध रीतिकाव्यरचनाओं की विशेषताओं का उल्लेख किया जाए, तो कमोबेश सारे रीतिग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा में रचित लक्षणग्रंथों के अनुकरण पर रचे गए हैं, जिन पर संस्कृत के अलंकारनिरूपक, रसनिरूपक, ध्वनिनिरूपक तथा नायिका भेदनिरूपक लक्षणग्रंथों का व्यापक प्रभाव है। हिन्दी में रचित लक्षणग्रंथों में लक्षणों के माध्यम से होने वाली काव्य भिव्यक्ति का स्वरूप उतना उत्कृष्ट नहीं हो सका है, जितना उदाहरणों में व्यक्त काव्य रचना का। चूँकि लक्षणग्रंथ के रचयिता आचार्यकोटि के कवि कहे जाते हैं, इसलिए वे पांडित्य प्रदर्शन करते हुए सब कुछ काव्य रूप में ही व्यक्त करने का उपक्रम करते हैं। परिणामतः जो स्पष्टता विवेचनपरक अभिव्यक्ति में होनी चाहिए, वह कदाचित नहीं आ सकी है। पद्यमय अभिव्यक्ति की यह शायद बड़ी कमी कही जा सकती है। रीतिग्रंथों में सर्वाधिक व्यापकता नायिका भेदविषयक वर्णनों में दिखाई देती है, जहाँ यत्रतत्र नवीनता और मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। देव और भिखारीदास जैसे कवियों की काव्यप्रतिभा नायिका भेदविषयक वर्णनों में सर्वाधिक मुखर हुई है।

रीतिनिरूपक ग्रंथों की रचना में कतिपय आचार्य कवि ऐसे हैं, जिन्होंने काव्य के सभी अंगों को अपने काव्यनिरूपण का विषय बनाया है। ऐसे आचार्य कवि सर्वांगनिरूपक कवि के रूप में समादृत हैं। ऐसे कवियों में चिन्तामणि, कुलपतिमिश्र, भिखारीदास, देव, सुरतिमिश्र, कुमारमणि भट्ट, श्रीपति मिश्र, सोमनाथ, ग्वाल कवि आदि के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। अलंकारनिरूपक ग्रंथों की रचना भी इस काल में बहुतायत से हुई है। इन ग्रंथों का उद्देश्य व्यापक स्तर पर अलंकारों का परिचय करवाना रहा है। ऐसे लक्षणग्रंथों की परंपरा केशवदास की कविप्रिया से मानी जाती है। अलंकारनिरूपक कवियों में आचार्य केशवदास, मतिराम, जशवंतसिंह, भूषण, श्रीपति मिश्र, गोविंद, दूलह, पद्माकर,

दलपतिराय वंशीधर, रसिक सुमति, रघुनाथ वंदीजन, हरिनाथ आदि के नाम प्रमुख हैं।

रसनिरूपक कवियों में केशवदास, चिन्तामणि, तोष, मंडन, देव, भिखारीदास, रसलीन, शंभुनाथ मिश्र, बेनी प्रवीन, पद्माकर, ग्वालकवि आदि के नाम प्रमुख हैं। कलाप्रदर्शन की भावना से प्रेरित इन कवियों का अधिकांश सर्जन कविता करने के लिए कविता के निकष पर आधृत है, जहाँ कविता में शाब्दिक चमत्कार के साथ उसके बाह्यपक्ष या बाह्य कलेवर को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करना इन कवियों की काव्य रचना का मुख्य ध्येय कहा जा सकता है। कहा जा सकता है कि बौद्धिक काव्यकौशल के आधार पर रचित रीतिबद्ध कविता का अभिव्यक्तिपक्ष कलात्मक सौंदर्य की दृष्टि से चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है, पर स्वाभाविक और भावात्मक पक्ष की दृष्टि से काव्य का अनुभूतिपक्ष किंचित् दबा हुआ-सा प्रतीत होता है। बहिरंग को विविधवर्णी चित्रों से सजाने के क्रम में काव्य का अंतरंगपक्ष रीतिबद्ध कवियों से उपेक्षित-सा हो गया है। बावजूद इसके रीतिकाल की रीतिबद्ध कविता काव्यकला की कसौटी पर बाह्य अभिव्यक्ति की कलात्मक प्रस्तुति है, जो हमें कई रूपों में चमत्कृत करती है।

रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल में रीतिबद्ध काव्यरचना का विकास एवं विस्तार जिन तत्कालीन परिवेश और परिस्थितियों में हुआ था, उसे देखते हुए साहित्यसर्जन का वह प्रयास स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। उत्तरमध्यकाल की दरबारी संस्कृति में विकसित होने वाली काव्यरचना का स्वरूप तत्कालीन शासकों की रुचि-अभिरुचि से परिचालित-संचालित हो, यह नितांत स्वाभाविक ही नहीं, वरन् उसकी अनिवार्य विवशता भी कही जा सकती है। ऐसे राजाश्रय में अपना आकार और स्वरूप ग्रहण करनेवाली रीतिबद्ध काव्य रचना की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन और विश्लेषण यहाँ अपेक्षित है, जिसे निम्नवत रेखांकित किया जा सकता है–

1. शास्त्रीयता का परंपरागत आधार

रीतिबद्ध कविता की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उसका स्वरूप शास्त्रीयता का आधार (Classical Base) अपनाकर ही निर्मित हुआ है। रीतिबद्ध काव्यरचना की आधारशिला संस्कृत काव्यशास्त्रीय संप्रदायों की शास्त्रीय परंपरा पर आद्ध होने के कारण रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीयता का सर्वत्र

सम्मान किया है, जिसके कारण रीतिबद्ध काव्य को क्लासिकल काव्य की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यांग-विवेचन की शास्त्रीय पद्धति है, जिसके अंतर्गत काव्य के समस्त अंगों-उपांगों का वर्णन एक निश्चति पद्धति और नियम के आधार पर किया जाता है। रीतिबद्ध कवियों ने उसी पद्धति और नियम को अपने काव्यसर्जन के लिए आधार के रूप में अपनाया। कमोबेश पूरी रीतिबद्ध कविता काव्यशास्त्र के व्यापक अध्ययन के बगैर समझ में नहीं आ सकती, "रीतिकाल की कविता समझने के लिए एक विशेष प्रकार की दीक्षा अपेक्षित है। इसका कारण यह है कि इस कविता में काव्यशास्त्रीयता की प्रबलता है। उस समय सभी कवि रस, अलंकार, छंद और नायिका-भेद का अध्ययन करके सर्जन-प्रवृत होते थे, इसलिए उनकी कविता का वास्तविक अर्थ तभी खुल पाता है, जब पाठक को भी उन काव्यांगों की जानकारी हो।" (मोहन अवस्थी, हिन्दी साहित्य का विवेचनापरक इतिहास, पृ. 188)

रीतिबद्ध कवियों द्वारा अधिकांशत: अभिव्यक्तिपक्ष को प्रमुखता देने के कारण काव्य का बाह्यपक्ष काव्यशास्त्रीय तत्त्वों से बहुत अधिक बोझिल हो गया है और काव्य में अनुभूतिपक्ष की प्राय:उपेक्षा हो गई है। श्रेष्ठ काव्य में अनभूतिपक्ष एवं अभिव्यक्तिपक्ष का सुंदर समन्वय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से रीतिबद्ध काव्यरचना का अधिकांश एकांगी हो गया है, जिसका बाह्य कलेवर रस, छंद, अलंकार, नायिका-भेद आदि के अतिशय प्रयोग के कारण बहुत दुरूह और बनावटी हो गया है। उसके लिए काव्यशास्त्रीय रीति-नीति की सम्यक् समझ आवश्यक है। कमोबेश सभी ख्यात् रीतिबद्ध कवियों को काव्यशास्त्रीय ज्ञान के बिना समझने में कठिनाई होती है। वस्तुत: शास्त्रीयता रीतिबद्ध कविता में सर्वत्र भरीपड़ी है, जिसे उसकी प्रमुख विशेषता कही जा सकती है

2. आचार्यत्व/पांडित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति

रीतिकालीन कवियों के सामने संस्कृत काव्यशास्त्र की रीतिनिरूपण विषयक व्यापक और सुदृढ़ परंपरा विद्यमान थी। पूर्ववर्ती अलंकार, रस, ध्वनि जैसे काव्यशास्त्रीय संप्रदायों के माध्यम से काव्यांगविवेचन के क्रम में सर्वांगनिरूपण का व्यापक प्रयास हो चुका था। रीतिबद्ध आचार्य कवियों नें संस्कृत काव्यशास्त्र में रीतिनिरूपण की उसी परंपरा को आधार बनाकर लक्षणग्रंथों की रचना की। आचार्यत्व एवं पांडित्य प्रदर्शन रीतिबद्ध कविता की एक सामान्य प्रवृत्ति कही जा

सकती है, जिसके कारण कमोबेश प्रत्येक रीतिबद्ध कवि स्वतंत्र रूप से मौलिक काव्यसर्जन में कोई विशेष रुचि न रखते हुए, रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों की रचना करने में प्रवृत होता हुआ दिखाई देता है। रीतिनिरूपण की इस प्रवृत्ति में वह अपने शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन करने की महती आकांक्षा से ओतप्रोत दिखाई देता है। इस दृष्टि से व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा में रीतिबद्ध आचार्य कवियों नें संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा का व्यवस्थित रूप से अध्ययन-मनन किया और उसके उपरांत हिन्दी में रीतिग्रंथों का निर्माण कर अपनी विद्वत्ता का व्यापक परिचय दिया। ऐसी काव्यशास्त्रीय लक्षणग्रंथरचना के माध्यम से आचार्य कवि अपने ज्ञान और कवित्वशक्ति को उजागर करने का प्रयास करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

आचार्यत्वप्रदर्शन के इस प्रयास में कतिपय आचार्य कवियों ने काव्य के लगभग सभी अंगों-उपांगों का सम्यक् विवेचन किया है। हालाँकि अधिकतर कवियों का विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र का निरा अनुकरण भी प्रतीत होता है, पर उन्होंने काव्य के लक्षण, काव्य-हेतु, काव्यप्रयोजन, काव्यभेद, काव्य की आत्मा, रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, गुण, शब्द-शक्ति, नायिका-भेद, दोष, छंद आदि को अपने विशद् विवेचन का आधार बनाया, जिससे उनके अगाध पांडित्य और असाधारण काव्य प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। लक्षणग्रंथों की रचना करने वाले अधिकतर आचार्य कवियों का यह विश्वास था कि इस प्रकार के सर्जन से उन्हें बहुत बड़े आचार्य की पदवी और प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। आचार्यत्वप्रदर्शन के इस व्यामोह में कतिपय आचार्यों ने अपने आश्रयदाताओं के विशेष आग्रह पर भी लक्षणग्रंथों की रचना की है। आचार्य केशव द्वारा रचित कविप्रिया एवं रसिकप्रिया जैसे लक्षणग्रंथ इसके सबसे प्रमुख उदाहरण कहे जा सकते हैं, जो प्रवीणराय (केशव के आश्रयदाता ओरछा नरेश की राजनर्तकी) को काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के लिए रचे गए थे। वस्तुतः आचार्यत्वप्रदर्शन की सार्वभौम प्रवृत्ति सभी रीतिबद्ध कवियों में पाई जाती है।

3. शृंगारपरक भावाभिव्यक्ति का बाहुल्य

रीतिकालीन काव्यरचना के मूल में शृंगार की व्यापक प्रवृत्ति विद्यमान है। इस काल का संपूर्ण साहित्य शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। रीतिबद्ध काव्य के अंतर्गत रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों की रचना करने वाले आचार्य कवियों की काव्यरीति विषयक अवधारण शृंगार की पीठिका पर ही आधृत है।

आचार्य कवियों द्वारा संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आधार पर रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों की रचना के पीछे यही शृंगारिक भावना कार्य कर रही थी। यद्यपि रीतिकाल में शृंगारपरक काव्याभिव्यक्ति के अतिरिक्त भक्ति, नीति, वीर आदि से संबंधित काव्यरचनाएँ भी की गई हैं, तथापि ऐसी रचनाओं के मूल में भीशृंगार की प्रबल भावना विद्यमान है। रचना चाहे किसी भी विषय से संबंधित हो रही हो, पर उसे शृंगार का आधार अनिवार्यत: मिला हुआ था, जिसके कारण उसमें किसी न किसी रूप में शृंगार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। यहाँ तक कि भूषण जैसा वीर रस का कवि भी शृंगारिक भावना से स्वयं को मुक्त नहीं कर सका। चूँकि रीतिकाल के सभी आचार्य कवि एवं अन्य कवि शृंगार रस को सर्वोपरि महत्ता देते हुए उसे रसराज के रूप में स्वीकार करते हैं, अतएव कमोबेश सभी कवियों ने शृंगार की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार की है। यही कारण है हो सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने समूचे काल के लिए शृंगारकाल नाम रखे जाने का संकेत किया था। बाद में उनके समकालीन और प्रिय शिष्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उत्तरमध्यकाल के लिए शृंगारकाल नाम की उपयुक्तता को सप्रमाण न केवल सिद्ध किया, वरन् इस नामकरण को पूरी तरह स्थापित भी कर दिया।

दरबार या राज्यसत्ता का संरक्षण प्राप्त होने के कारण उसका मूल स्वरूप विलासिता से ओतप्रोत अतिशय शृंगारी ही है। कवियों को संरक्षण प्रदान करने वाले आश्रयदाताओं की भावुक भावनाओं और उनकी विलासिता का पोषण कदाचित् शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति से ही संभव था। शृंगार की इसी मूल भावना से इस काल के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की अपेक्षाओं के अनुरूप कविताकामनी को शृंगार के परिधान में ही पूरी तरह सजाना- सँवारना उचित समझा। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के सभी अंग-उपांगों का विवेचन करते हुए, उन्हें काव्य का विषय बनाकर, उसे बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। हालाँकि उनके शृंगारिक वर्णनों में कामुक चित्रण और विलासितापूर्ण भाव अधिक विद्यमान हैं, जिनके कारण उनमें उदात्त भावना का अभाव दृष्टिगत होता है, पर वहशृंगार नारी के बाह्य सौंदर्य को बहुत खुलकर अनावृत रूप में प्रस्तुत करता है। यहाँ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की टिप्पणी बहुत प्रासंगिक है-"रीतिकाल का काव्य यद्यपि शृंगार प्रधान है, पर इस शृंगाररस की साधना में जीवन की संतुलित दृष्टि का अभाव है, जैसे सब ओर से चोट खाकर किसी ओर रास्ता न पाकर, बुद्धि घर के भीतर सिमट गई हो, जैसे जीवन के व्यापक क्षेत्रों में मनोनिवेश का अवसर न मिलने के कारण मनोरंजन का

एकमात्र साधन नारी देह की शोभाओं-चेष्टाओं के अवलोकन–कीर्तन तक ही सीमित हो गया हो।" (हिन्दी साहित्य: उद्‌भव और विकास, पृ.163)

4. नारी-सौन्दर्य चित्रण

अधिकांशत:शृंगारी भावना पर आधारित होने के कारण रीतिकालीन कविता के केंद्र में नारी है, जिसके सौंदर्य-चित्रण की ओर रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कमोबेश सभी कवियों का रुझान दृष्टिगत होता है। हालाँकि रीतिकाल में विविध प्रकार का साहित्यसर्जन हुआ है, पर शृंगार वर्णन की प्रमुखता ने उसे एक विशेष स्वरूप में ढाल दिया है। शृंगार और सौंदर्य का आधार नारी है। अत: रीतिबद्ध कवियों नें नारी के सौंदर्यचित्रण को अपने काव्यसर्जन में बहुत प्रमुखता के साथ स्थान दिया है। कहा जा सकता है कि रीतिकाल की कविता के मूल में यदि शृंगार है, तो उसका कथ्य या विषय नारी है। यही कारण है कि नारी सौंदर्य के विविध चित्र इस काल की कविता में भरे पड़े हैं। पतोन्मुख विलासिता से परिपूर्ण रीतिबद्ध कवियों की कविता सामंती विलासी वृत्तियों का पोषण करने के कारण नारी सौंदर्यचित्रण के विविध वर्णी चित्रों से सराबोर है। रीतिकाल का कवि नारी को विलासिता की मूर्ति मानता है, जिसके कारण वह तत्कालीन परिस्थितिओं के वशीभूत होकर समसामयिक प्रभाव में नारी के सौंदर्यचित्रण में अपनी पूरी काव्य प्रतिभा को आजमाने से नहीं चूका है। बावजूद इसके रीतिबद्ध कवियों के काव्यसर्जन में नारी का स्वाभाविक चित्रण कम ही हुआ है, क्योंकि वहाँ नारी और उसका सौंदर्य दोनों प्रदर्शन की वस्तु प्रतीत होते हैं, जहाँ नारी अपने सौंदर्याभिव्यक्ति में सहज और स्वाभाविक नहीं है, "यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संघटन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है। नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कुछ नहीं है, वह केवल पुरुष के आकर्षण का केंद्र भर है।" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य–उद्‌भव और विकास, पृ.162-63)

इस काल की कविता में नारी को साढ़े पाँच फिट के कलेवर में बहुत सजधज के साथ बढ़ाचढ़ाकर प्रस्तुत किया गया है, जहाँ उसके बाह्य स्वरूप और बाह्य रूपलावण्य पर कवियों की दृष्टि भरपूर गई है, पर उसके आंतरिक रूपसौंदर्य को परखने का प्रयत्न नहीं किया गया है, जो नारी के समस्त बाह्य सौंदर्य का अनंत स्रोत है। रीतिकाल का कवि नारी की रूपलालसा के अतिरिक्त उसका और कोई अन्य रूप नहीं जानता। रीतिबद्धता की सीमित काव्यप्रतिभा

नारी के बाह्य सौंदर्य वाले रूप के अतिरिक्त अन्य कोई रूप नहीं पहचानती। यही कारण है कि रीतिकाल की अधिकांश कविता में नारी का प्रिया वाला रूप ही उभरकर सामने आया है, जो उसके वास्तविक सौंदर्य को ढँक देता है। रीतिकालीन कवि की दृष्टि में नारी केवल माँसल उत्तेजना की वस्तु है। वह नारी को उसके वास्तविक रूप में नहीं, विलासिता की पुतली के रूप में चित्रित करना चाहता है। वस्तुत: इस काल की कविता में नारी के सौंदर्यचित्र बाह्य एवं स्थूल हैं।

5. प्रकृति के उद्दीपक रूप की प्रमुखता

राज्याश्रित दरबारी संस्कृति के कृत्रिम परिवेश में काव्यसर्जन करने वाले रीतिबद्ध कवियों के पास स्वतंत्र रूप से प्रकृति के स्वछंद स्वरूप का स्वाभाविक और नैसर्गिक चित्र खींचने का अवकाश ही नहीं था। मूलत: और अधिकांशत: नारी सौंदर्य के बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करने वाले रीतिकाल के कवि की दृष्टि प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण को नजरअंदाज कर देती है। हाँ, नारी सौंदर्य और शृंगार के परिप्रेक्ष्य में उन्हें उद्दीप्त करने वाले प्रमुख उपादान के रूप में प्रकृति के मोहक रूप का प्रसंगानुकूल चित्रण करने में रीतिबद्ध कवियों का कोई सानी नहीं है। शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) के व्यापक वर्णनों में प्रकृति उद्दीपन के रूप में एक प्रमुख सहायिका बनकर सर्वत्र विद्यमान है। रीतिबद्ध कवियों के राजाश्रय में रहने तथा उसके विलासी और शृंगारिक परिवेश के अनुरूप वृत्तिकाश्रित पांडित्य प्रदर्शन एवं चमत्कारपूर्ण काव्यरचना की विवशता के कारण उनके काव्य में प्रकृति बिंबों के स्वाभाविक नयनाभिराम चित्रण के सहज दृश्य तो नहीं उभरे हैं, पर नायक-नायिका के प्रेमालाप-प्रसंगों में कायिक, आंगिक एवं वाचिक भावाभिव्यक्तियों में उद्दीपक प्रकृति नें उन कवियों को सर्वत्र आकृष्ट किया है। वस्तुत: रीतिबद्ध कविता में प्रकृति उद्दीपन रूप में चहुँओर अवस्थित है।

6. अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण

रीतिबद्ध काव्यरचना में अलंकारों का विशेष महत्त्व है। रीतिकालीन साहित्य की प्रस्तावना अलंकार विवेचन की पीठिका पर ही आधृत है। रीतिकाल के प्रथम आचार्य कवि आचार्य केशवदास अलंकारवादी आचार्य कवि हैं, जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की अलंकार विवेचन की परंपरा को रीतिकाल में स्थापित

करने का स्तुत्य प्रयास किया एवं काव्य में अलंकारों के महत्त्व को स्वीकार किया। उनकी रचना कविप्रिया अलंकार विवेचन का ही ग्रंथ है। यद्यपि रीतिकाल में काव्यांग विवेचन के क्रम में रस की व्यापक महत्ता स्वीकार की गई है, पर इस काल के कवियों में अलंकारों के प्रति भी विशेष आकर्षण दिखाई देता है। राजदरबार में प्रतिस्पर्धात्मक काव्यपरिवेश होने के कारण कवियों को अपनी काव्यरचनाओं की कलात्मक आलंकारिक प्रस्तुति करना अप्रतिवार्य आवश्यकता कही जा सकती है। अलंकार के बिना काव्यकलेवर की साजसज्जा को नयनाभिराम स्वरूप दे पाना कदाचित् संभव नहीं। यही कारण है कि रीतिबद्ध कवियों ने काव्य में प्रयत्नपूर्वक सायास अलंकारों का व्यापक समावेश किया है। हालाँकि कवियों की दृष्टि शब्दालंकार एवं अर्थालंकार, दोनों पर रही है, पर कहीं-कहीं उन्होंने शब्दालंकारों पर इतना अधिक जोर दिया है कि काव्य का भाव भी दब-सा गया है। वस्तुतः विविध भावों की काव्याभिव्यक्ति में अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण रीतिबद्ध कवियों की महत्त्वपूर्ण प्रवृति कही जा सकती है।

7. राजाश्रयाश्रित प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति

रीतिबद्ध काव्य का प्रणयन राजदरबार के जिस सामंती और विलासी परिवेश में हो रहा था, वहाँ कवियों के मध्य राज्याश्रित प्रतिस्पर्धा की व्यापक प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इसका कारण संभवतः कवियों द्वारा राजसभा में सम्मान प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा रही हो। सबको आश्चर्यचकित कर देनेवाली चमत्कारपूर्ण कलात्मक काव्याभिव्यक्ति के माध्यम से एक दूसरे से आगे निकल जाने तथा अपने काव्य कौशल का प्रभुत्व स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा में कविगण प्रतिस्पर्धात्मकता का सम्मान करने के लिए वाध्य थे। इसके लिए वे काव्यरचना का ऐसा नवीन रूप तलाशने के लिए विवश होते थे, जो पाठक या श्रोतावर्ग के लिए कुतूहल और मनोरंजन का माध्यम बन सके तथा उन कविगण को यथोचित् मानसम्मान दिला सके। ऐसे ही प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश में समस्यापूर्ति जैसी कुतूहलपरक काव्यशैली का प्रचलन हुआ, जो काव्यप्रतिभा का निकष बनने के साथ ही कवि कोविद एवं श्रोताजन समूह के मध्य बहुत लोकप्रिय हुई। काव्यात्मक पंक्तियों के माध्यम से एक समस्या देकर उसके समाधान के लिए कवियों को प्रतिस्पर्धा में आमंत्रित करना तथा कवियों द्वारा एक से बढ़कर एक समाधान प्रस्तुत करने की रोचक काव्य प्रतिस्पर्धा पूरी सभा

को उद्वेलित और स्पंदित कर देने में समर्थ होती थी। कवियों द्वारा उपयुक्त राजाश्रय की तलाश तथा तलाश पूरी होने पर अपनी स्वतंत्र काव्याभिव्यक्ति से अलग, सत्ता की रुचि-अरुचि के अनुरूप काव्य रचना का प्रयास उन्हें अनपेक्षित प्रतिस्पर्धा के लिए प्रेरित करता था। प्रतिस्पर्धा का यह काव्यात्मक परिवेश रीतिबद्ध काव्य की एक प्रमुख प्रवर्घत्ति कही जा सकती है।

8. मुक्तककाव्य-प्रणयन

रीतिकाल के अधिकतर कवियों नें अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति मुक्तकों के माध्यम से की है। यद्यपि कतिपय कवियों ने प्रबंधकाव्यों की रचना भी की है, पर वह इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती है, क्योंकि एक तो प्रबंधकाव्य की रचना परिमाण की दृष्टि से बहुत कम है, दूसरे, यह काल प्रबंधरचना की दृष्टि से अनुकूल नहीं कहा जा सकता। वहीं दूसरी ओर देखा जाए, तो मुक्तककाव्य-प्रणयन में इस काल के कवियों का मन बहुत रमा है और उनकी काव्यरचना का व्यापक कौशल उसी के माध्यम से प्रकट हुआ है। रीतिकाल का छंदविधान अधिकांशतः सवैया, कवित्त, दोहे आदि तक सीमित है। अपेक्षाकृत छोटे छंदों के माध्यम से चामत्कारिक काव्य की प्रभावी प्रस्तुति इस काल की काव्य रचना की एक बड़ी विशेषता कही जा सकती है। अपनी बात को बहुत प्रभावी बनाने के लिए मुक्तक रूप में छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से कवि लोग अपने आश्रयदाताओं को प्रभावित करने में प्रायः सफल हो जाते थे, क्योंकि न तो प्रबंधकाव्य सुनाने के लिए किसी को फुर्सत थी, न ही किसी के पास इतना अवकाश था कि वह प्रबंधकाव्य सुने। परिणामतः मुक्तकों की रचना इस काल की कविता में बहुतायत से हुई। वस्तुतः मुक्तककाव्य की रचना इस काल की एक विशेष प्रवृत्ति कही जा सकती है, जिसके संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण है, "इसमें रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 189)

9. ब्रजभाषा का लालित्य

रीतिकाल में ब्रजभाषा का जैसा माधुर्य और लालित्य दृष्टिगत होता है, वैसा इससे पूर्व उस रूप में नहीं मिलता। इस काल की कविता में ब्रजभाषा का

जो संश्घलिष्ट रूप हमें दिखाई देता है, वह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि इस समय तक ब्रजभाषा का काव्य सामर्थ्य पूरी तरह से विकसित और परिपक्व हो चुका था। ब्रजभाषा के स्वरूप और सामर्थ्य को अपेक्षया अधिक संतुलित और समुन्नत बनाने में रीतिकालीन कवियों नें बहुत अधिक योगदान दिया। देव, मतिराम, सेनापति, पद्माकर प्रभृति कवियों की काव्यरचनाओं में ब्रजभाषा का मनोहारी और अर्थगांभीर्ययुक्त स्वरूप देखकर आश्चर्य होता है। प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से इस काल की कविता में ब्रजभाषा की बहुत प्रभावी प्रस्तुति दिखाई देती है। अपनी काव्यभिव्यक्ति को और अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए रीतिकालीन कवियों नें ब्रजभाषा के स्वरूप को बहुत परिष्कृत रूप में ढाला। इस काल में ब्रजभाषा की चरम उन्नति दिखाई देती है।

रीतिबद्ध काव्य के प्रमुख कवि

रीतिकाल के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ निम्नवत् हैं–

आचार्य केशवदास (1555 -1617) रीतिकाल की सम्यक् प्रस्तावना लिखने वाले रीतिबद्ध काव्य रचना के प्रेरक आचार्य कवि। रसिकप्रिया (सन् 1591, हिन्दी में रसविवेचन करने वाला प्रथम लक्षणग्रंथ), कविप्रिया (सन् 1601), रतन बावनी, वीर चरित्र, जहाँगीर जसचंद्रिका, रामचंद्रिका, विज्ञानगीता, नखशिख, शिखनख, बारहमासा, छंदमाला।

चिन्तामणि (1609–1685 के मध्य विद्यमान) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य कवि, जो केशवदास से भिन्न आदर्श को लेकर चलने और रीतिकाल की अविच्छिन्न काव्यपरंपरा का प्रवर्तन करने वाले कवि के रूप में ख्यात। रसविलास, छंदविचार पिंगल, श्रृंगारमंजरी, कविकुलकल्पतरु, कृष्णचरित्र काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, रामायण, रामाश्वमेध, गीत गोविंद, बारह खड़ी, चौंतीसा।

जसवंतसिंह (सन् 1627–1729) रीतिकाल के अलंकार निरूपक आचार्य कवियों में प्रमुख कवि, भाषाभूषण, अपरोक्ष सिद्धांत, सिद्धांत बोध, अनुभवप्रकाश, आनंदविलास, सिद्धांतसार।

मतिराम (1617) चिन्तामणि के भाई। रसराज, ललितललाम, साहित्यससार, मतिराम सतसई, लक्षण श्रृंगार, फूल मंजरी।

भूषण (सन् 1613–1715) रीतिबद्ध कवियों में वीर रस के एकमात्र प्रमुख लोकप्रिय कवि। अनुमान है कि हृदयराम द्वारा 'कवि- भूषण' की उपाधि

देने के कारण ' भूषण' उपनाम तथा वास्तविक नाम घनश्याम त्रिपाठी है। शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हजारा।

देव (सन् 1637-1768) संपूर्ण रीतिकाल में बिहारी के उपरांत सर्वाधिक लोकप्रिय एवं गंभीर-स्वाभाविक कवि। आलोचकों के लिए बिहारी को टक्कर देने वाले कवि, जिनके कारण बिहारी-देव, देव-बिहारी का साहित्यिक विवाद, जो हिन्दी साहित्य की रोचक साहित्यिक कलह है और हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना को गति देने वाली प्रमुख घटना है। भाव विलास, रसविलास, भवानी विलास, कुशल विलास, जाति विलास, वृक्ष विलास, पावस विलास, राधिका विलास, सुजान विनोद, सुमिल विनोद, वैराग्य शतक, नीति शतक, प्रेम तरंग, सुखसागर तरंग, रसानंद लहरी, राग रत्नाकर, प्रेम चंद्रिका, प्रेम दीपिका, प्रेम दर्शन, अष्टयाम, सुंदरी सिंदूर, काव्य रसायन, देव चरित, देवमाया प्रपंच, नखशिख आदि।

कुलपति मिश्र (रचनाकाल सन् 1660-1700) पिंगलाचार्य के रूप में ख्यात, संस्कृत काव्यशास्त्र के विद्वान आख्याता, मौलिक काव्य रचना प्रतिभा से संपन्न बहुत समादृत आचार्य कवि। रस रहस्य, संग्राम सार, दुर्गाभक्ति चंद्रिका, युक्ति तरंगिणी, नखशिख।

भिखारीदास (रीतिबद्ध कवियों में बहुत समादृत। काव्यशास्त्रीय ज्ञान एवं पांडित्य के साथ मौलिक काव्यप्रतिभा का अद्‌भुत संतुलन) विष्णुपुराण भाषा, नामप्रकाश, शतरंज शतिका, रस सारांश, छंदार्णव, पिंगल, काव्य निर्णय।

पद्‌माकर (1753-1833) पद्‌माभरण, जगद्विनोद, हिम्मतबहादुर विरुदावली, प्रतापसिंह विरुदावली, प्रबोध पचासा, ईश्वर पचीसी, गंगा लहरी, रामरसायन इत्यादि।

श्रीपति मिश्र, काव्य सरोज, कविकल्पद्रुम, रस सागर, अनुप्रास विनोद, विक्रम विलास, सरोजकलिका, अलंकारगंगा।

मंडन, रसरत्नावली, रसविलास, नखसिख, काव्यरत्न, नैनपचासा, जनकपचीसी।

कालिदास त्रिवेदी, कालिदास हजारा, वरवधूविनोद, जंजीराबंद, राधामाधवबुधमिलन विनोद।

सुखदेवमिश्र, वृत्तविचार, छंदविचार, रसार्णव, शृंगारलता।

सुरतिमिश्र, अलंकारमाला, रसरत्नमाला, रससरस, रसग्राहक चंद्रिका, नखशिख, काव्यसिद्धांत, रसरत्नाकर, भक्तिविनोद, शृंगाररस।

ग्वाल कवि, यमुनालहरी, भक्तभावन, रसिकानंद, रसरंग, कृष्ण जू को नखशसिख, दूषण दर्पण, राधामाधवमिलन, राधाष्टक, कविहृदय विनोद, कविदर्पण, नेहनिर्वाह, बंसीवीसा, कुब्जाष्टक, षडऋतुवर्णन, अलंकारभ्रमभंजन, रसरूप, दृगशतक।

इनके अतिरिक्त अन्य कवियों में–भूपति (सतसई, कंठाभूषण, रसरत्नाकर), तोषनिधि (सुधानिधि, नखशिख, विनयशतक), सोमनाथ, ससिनाथ (रसपीयूषनिधि, श्रृंगारविलास, प्रेमपचीसी), रसलीन (अंगदर्पण, रसप्रबोध), रसनिधि (रतनहजारा, विष्णुपदकीर्तन, कवित्त, बारहमासी, गीतिसंग्रह, अरिल्ल, हिंडोला, सतसई), रघुनाथ (जगतमोहन), दूलह (कविकुलकंठाभरण, स्फुट छंद), शम्भुनाथ मिश्र (रसकल्लोल, रसतरंगिणी, अलंकारदीपक), शिवसहाय दास (शिवचौपाई, लोकोक्ति रस कौमुदी), गुमान मिश्र (अलंकार दर्पण) रूपसाहि (रूपविलास), चंदन (श्रृंगार सागर, काव्याभरण, कल्लोल तरंगिणी, चंदन सतसई, नखशिख, केसरी प्रकाश, पथिक बोध, नाममाला कोष, पत्रिकाबोध, तत्त्वसंग्रह, सीतवतन, कृष्णकाव्य, प्राज्ञविलास), बेनी प्रवीन (श्रृंगार भूषण, नवरस तरंग), प्रतापसिंह चरखारी (जयसिंह प्रकाश, व्यंग्यार्थ कौमुदी, काव्यविलास, श्रृंगार मंजरी, श्रृंगारशिरोमणि, अलंकार चिन्तामणि, काव्यविनोद), रामसिंह (जुगलविलास), यशोदानंदन, गुरदीन पांडेय, कर्ण कवि, ब्रह्मदत्त आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रीतिकाल की समयसीमा में कवियों नें काव्यरचना की जो पद्धति स्वीकार की उसके अंतर्गत रीतीतर कवियों की स्वछंद भावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त रीतिबद्धता इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है। काव्यशास्त्रीय परंपरा पर आधारित काव्यांगविवेचन के क्रम में रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों की रचना करने वाले कवि उन्हीं रीतियों के आधार पर श्रृंगारपरक काव्यरचना का व्यापक प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। कवियों की दृष्टि लक्षण और उदाहरण के माध्यम से रीतियुक्त श्रृंगारिक काव्याभिव्यक्ति पर टिकी है।

काव्यरचना के इस व्यापक प्रयास को रीतिबद्ध काव्य के रूप में स्वीकार किया गया है और ऐसी काव्य रचना करने वाले कवियों को रीतिबद्ध कवि के रूप में जाना जाता है। काव्य रचना की एक बँधीबँधाई परिपाटी में बँधकर

परंपरागत काव्य रचना करने के कारण ऐसे कवियों को रीतिबद्ध कवि कहा गया, जो काव्य रचना के नियमों एवं लक्षणों के साथ-साथ तदनुरूप उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपनी काव्यप्रतिभा और पांडित्य को प्रदर्शित कर रहे थे। ऐसे कवि आचार्य कवि की श्रेणी में आने वाले रीतिबद्ध कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। रीतिकाल में व्यापक प्रभाव रीतिबद्ध कवियों का है। रीतिबद्ध कवियों की प्रमुख प्रवृत्तिश्रृंगारपरक रचनाओं को विविध रूपों में प्रस्तुत करना है। रीतिनिरूपक लक्षणग्रंथों के माध्यम से काव्य के समस्त अंगों-उपांगों को स्पष्ट करने के लिए लक्षणों और उदाहरणों के माध्यम से काव्यमय अभिव्यक्ति करते हुए हिन्दी कविता का जैसे प्रसार एवं विकास इन कवियों ने किया है, वह आश्चर्यजनक रूप से चमत्कारिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है।

इस धारा के आचार्य कवियों ने अलंकारनिरूपण, रसनिरूपण, नायिकाभेदनिरूपण आदि की सुदृढ़ और व्यापक परंपरा हिन्दी में स्थापित की, जो संस्कृत काव्यशास्त्रीय संप्रदायों से प्रेरित होने के बावजूद हिन्दी में एक नवीन काव्यपरंपरा की सूचक थी। राजाश्रय में रहते हुए दरबार की अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं के अनुरूप चमत्कारपूर्ण कलात्मक काव्याभिव्यक्ति करना इस काल के कवियों के लिए अनिवार्य सा हो गया था। यही कारण है कि कविगण अपने ज्ञान और पांडित्य को काव्य रचना के माध्यम से प्रस्तुत करना अपना साहित्यिक धर्म समझने लगे थे। रीतिबद्ध कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में जिनका उल्लेख किया जा सकता है, उनमें, शास्त्रीयता का परंपरागत आधार, आचार्यत्व/पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति, श्रृंगारपरक काव्याभिव्यक्ति का बाहुल्य, नारी-सौन्दर्य चित्र, प्रकृति के उद्दीपक रूप की प्रमुखता, अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण, राजाश्रयाश्रित प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति, मुक्तककाव्य-प्रणयन, ब्रजभाषा का लालित्य आदि प्रमुख हैं। समग्रतः वह परंपरागत रीतिबद्ध काव्य रचना का व्यापक प्रभाव वाला काल है, जो संस्कृत की काव्य शास्त्रीय रचनापद्धति का अनुकरण होने पर भी हिन्दी में एक नवीन और मौलिक काव्यधारा कही जा सकती है।

3

रीति संप्रदाय

रीति सम्प्रदाय आचार्य वामन (9वीं शती) द्वारा प्रवर्तित एक काव्य-सम्प्रदाय है, जो रीति को काव्य की आत्मा मानता है। यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' एक व्यापक अर्थ धारण करने वाला शब्द है। लक्षणग्रंथों में प्रयुक्त 'रीति' शब्द का अर्थ ढंग, शैली, प्रकार, मार्ग तथा प्रणाली है। 'काव्य रीति' से अभिप्राय मोटे तौर पर काव्य रचना की शैली से है। रीतितत्त्व काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। 'रीति' शब्द 'रीड' धातु से 'क्ति' प्रत्यय देने पर बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ प्रगति, पद्धति, प्रणाली या मार्ग है। परन्तु वर्तमान समय में 'शैली' (स्टाइल) के समानार्थी के रूप में यह अधिक समादृत है।

आचार्य वामन ने रीति सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में 'रीति' को काव्य की आत्मा घोषित किया है। उनके अनुसार 'पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है' (विशिष्टपदरचना रीतिः)। वामन के मत में रीति काव्य की आत्मा है (रीतिरात्मा काव्यस्य)। उनके अनुसार विशिष्ट पद-रचना, रीति है और गुण उसके विशिष्ट आत्मरूप धर्म है।

विशिष्ट पदरचना रितिः।

विशिष्ट शब्द को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं -

विशेषो गुणात्मा।

वामन ने गुण को विशेष महत्त्व दिया है। रीति काव्य की आत्मा है और गुण रीति के कारणभूत वैशिष्ट्य की आत्मा है।

डॉ नगेन्द्र अपनी पुस्तक 'रीति काव्य की भूमिका' में लिखते हैं कि-

रीति शब्द और अर्थ के आश्रित रचना चमत्कार का नाम है, जो माधुर, य ओज और प्रसाद गुणों के द्वारा चित्र को द्रवित, दीप्त और परिव्याप्त करती हुयी रस दशा तक पहुँचाती है।

काव्य में रीति का विशेष महत्त्व है। रीति के अन्य परिभाषाकार कहते है कि काव्य में रीति पदों के संगठन से रस को प्रकाशित करने में सहायक होती है। इस प्रकार रीति का काव्य में वही स्थान है, जो शरीर में आंगिक संगठन का है। जिस प्रकार अवयवो का उचित सन्निवेश शरीर के सौन्दर्य को बढाता है, शरीर को उपकृत करता है उसी प्रकार वर्णों का यथास्थान प्रयोग शब्द रूपी शरीर और अर्थ रूपी आत्मा के लिए विशेष उपकारक है।

आचार्य वामन ने रीति के तीन भेद तय किये हैं– वैदर्भी रीति, गौडी रीति, पाञ्चाली रीति। आचार्य दण्डी केवल दो ही भेद मानते हैं, वे पांचाली का समर्थन नहीं करते। दण्डी, 'रीति' के स्थान पर 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हैं। परवर्ती आचार्यो ने रीति के तीन से भी अधिक भेद स्थापित किये हैं। लाट देश में प्रयुक्त होने वाली एक 'लाटी' रीति का प्रादुर्भाव हुआ। बाद में भोज ने 'मालवी' और 'अवन्तिका' नामक दो अन्य रीतियों का अविष्कार किया। आचार्य विश्वनाथ रीति को काव्य का उपकारक मानते हैं। 'वक्रोक्तिजीवित' के लेखक क्रन्तक ने रीति का खुलकर विरोध किया, आचार्य मम्मट उनके समर्थन में आये और रीति को वृत्तियों से जोड़ने की बात की। राजशेखर ने रीति को काव्य का 'बाह्य तत्त्व' बताया। उनके अनुसार, –'वाक्यविन्यासक्रमो रीतिः'। किन्तु यह सब विरोध विद्वानों की आम सहमति नहीं पा सका और वामन के रीति सम्बन्धी विचारों को मान्यता मिली।

जातुधान पुंगीफल जव तिल धान है।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाहा महा हाँकि-हाँकि हुनैं हनुमान हैं। (कवितावली)

पांचाली रीति

पांचाली रीति न तो वैदर्भी की भांति समासरहित होती है और न गौडी की भांति समास-जटित। यह मध्यममार्ग है, जिसमें छोटे-छोटे समास अवश्य मिलते हैं। इस रीति से काव्य भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी बनता है। अनुस्वार का प्रयोग न होने से यह वैदर्भी की तुलना में अधिक माधुर्य युक्त होती है।

'पांचाली' रीति के सम्बन्ध में कहा गया है–'माधुर्य सौकुमार्यो प्रपन्ना पांचाली'। अर्थात, पांचाली में मधुरता और सुकुमारता होती है।

उदाहरण

मानव जीवन–वेदी पर, परिणय हो विरह–मिलन का।
सुख–दु:ख दोनों नाचेंगे, है खेल, आँख का मन का।

इस उदाहरण में अनुनासिक शब्द का अभाव है। जीवन–वेदी, विरह–मिलन और सुख–दु:ख में समास है। कर्ण–कटु या महाप्राण का प्रयोग लगभग नहीं किया गया है। शान्त–रस का निर्वेद इसमें मुखर है। अत: यहाँ पर पांचाली रीति का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

4

रीतिबद्ध काव्यधारा

रीतिबद्ध काव्यधारा उन कवियों की है, जिन्होंने राजाओं (उनकी पत्नी या प्रेमिकाओं) को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की। ये कवि पहले संस्कृत से काव्य लक्षण या सिद्धांत का अनुवाद ब्रज भाषा में करते, उसके बाद उदाहरण के रूप में कविता लिखते थे। इसी काव्यधारा को लक्षण-ग्रंथ परंपरा भी कहा जाता है तथा इनके कवियों को आचार्य। मध्यकाल में दरबार पर आश्रित कवियों के बड़े हिस्से में रीति या पद्धति से बद्ध काव्य रचने वाले कवि आते हैं। इन्होंने आत्म-प्रदर्शन या काव्य रसिकों को ज्ञान देने के लिए इस तरह के काव्य का सृजन किया। रीतिबद्ध काव्यधारा में केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी, कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, पद्माकर और मतिराम आदि महत्त्वपूर्ण कवियों को रखा जा सकता है।

रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी में रीति ग्रंथों की परंपरा का आरंभ चिंतामणि त्रिपाठी (1643 ई.) से माना है। हालांकि उनसे पहले लगभग 1601 ई. में केशवदास ने 'कविप्रिया' नामक लक्षण ग्रंथ लिखना आरंभ कर दिया था। केशवदास के बाद लगभग 40 वर्षों तक किसी ने भी लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा। दूसरी बात यह भी है कि केशवदास ने संस्कृत के आचार्यों का अनुसरण किया किंतु चिंतामणि और उनके बाद के कवियों ने संस्कृत आचार्यों की अनूदित रचनाओं जैसे 'चंद्रालोक', 'कुवलयानंद' का अनुसरण किया। यही कारण था कि

शुक्ल जी ने चिंतामणि से ही रीतिकाव्य का आरंभ माना, केशवदास से नहीं। नगेंद्र ने शुक्ल जी के इस मत का विरोध किया और केशवदास को ही रीतिकाव्य परंपरा का प्रवर्तक माना है।

रीतिकाव्य के लेखकों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। जिन कवियों ने काव्यशास्त्र के सभी संप्रदायों का विवेचन किया, उन्हें सर्वांगविवेचक वर्ग में रखा जाता है, जिनमें केशवदास, कुलपति मिश्र, भिखारीदास के नाम उल्लेखनीय हैं। दूसरे वर्ग विशिष्टांगविवेचक में उन कवियों को रखा जाता है, जिन्होंने एक-दो काव्यांगों का ही विवेचन किया, जिनमें मतिराम, देव, पद्माकर आदि उल्लेखनीय हैं। इस धारा के कवियों में 'लक्षण ग्रंथ' लिखने की परंपरा थी, अर्थात पहले काव्यांग का लक्षण देकर बाद में उसका उदाहरण देने की परंपरा, जैसे -

'जदपि सुजात सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता, बनिता, मित्त।।' (केशवदास)

'जहाँ एक ही बात को उपमेयो उपमान।
तहां अनन्वय कहत है कवि मतिराम सुजान।।' (मतिराम)

इन रचनाकारों की कविता में प्रायः अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के भाव दिखते हैं। यही कारण है कि इनके वर्णन प्रायः शृंगार प्रधान हैं जिनमें अधिकांशतः विलास व भोग की प्रवृत्ति है। जैसे -

'गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन है, चाँदनी है, चिक है, चरागन की माला है।

कहै पदमाकर ज्यों गिजा है सजी, सेज है, सुराही है, सुरा है और प्याला है।।'

कहीं कहीं आश्रयदाता की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी दिखायी पड़ जाता है - 'उपक्कैं तपक्कैं धड़क्कै महा हैं, प्रलै चिल्लिका सी भड़क्कै जहाँ हैं।' (पदमाकर)

रीतिबद्ध कवियों का आचार्यत्व-रीतिबद्ध काव्यधारा के 'लक्षण-ग्रंथ' लिखने वाले कवियों को आचार्य कहा गया। हालांकि इनके आचार्यत्व पर यह प्रश्न सदैव उठता रहा कि क्या इन्हें आचार्य माना जाय और माना भी जाय तो किस आधार पर? आचार्य प्रायः ऐसे विद्वान को कहा जाता है, जो नया सिद्धांत प्रस्तुत करे। दूसरे अर्थों में वह व्यक्ति आचार्य हो सकता है, जिसका आचरण अनुकरणीय हो। इन दोनों दृष्टियों से रीतिबद्ध काव्यधारा के कवि आचार्य नहीं

माने जा सकते, क्योंकि इन्होंने लक्षणों का केवल अनुवाद किया है, किसी प्रकार की मौलिकता प्रस्तुत नहीं की। इनका साहित्य भोगमूलक शृंगार, राजाओं की नकली वीरता तथा सामंती मानसिकता से भरा पड़ा है इसीलिए यह अनुकरणीय भी नहीं। हालांकि आचार्य शब्द का एक अन्य अर्थ भी है, जिसके अनुसार ज्ञान को सरल बनाकर प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को भी आचार्य कहा जाता है। इस दृष्टि से रीतिबद्ध काव्यधारा के लक्षण-ग्रंथकार कवि निश्चित रूप से आचार्य पद के अधिकारी हैं, क्योंकि इन्हें यह श्रेय तो दिया ही जाता है कि इन्होंने पहली बार साहित्य तथा अन्य कलाओँ के नियम और परंपरा के ज्ञान को जनसामान्य की भाषा में अभिव्यक्त किया।

5

रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल की विशेषताएँ – हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल रीतिकाल के नाम से पुकारा जाता है, इस समय के शासक साहित्य प्रेम, काव्य प्रेम तथा मनोरंजन के लिए कवियों को आश्रय देने लगे थे . कवियों का मुख्य ध्येय आश्रयदाताओं का मनोरंजन हो गया था .क्योंकि कवि चाँदी के चाँद टुकड़ों पर अपनी कला को राजदरबारों में गिरवीं रख चूका था .इस काल के कवियों में स्वतंत सुखी और परहित का अभाव है . राम और कृष्ण की प्रेम लीलाओं की ओट में कविगणश्रृंगार वर्णन, ऋतू वर्णन, नख शिख वर्णन आदि पर कविता लिखकर आचार्यत्व और पांडित्यपूर्ण की होड़ में लगे हुए थे . कवियों ने कलापक्ष में ही कुछ अधिक चमत्कार और नवीनता लाने का प्रयास किया . रीति का अर्थ शैली है चूँकि इन कवियों ने काव्य शैली की इस विषिस्ट पद्धति का विकास किया इसीलिए इस काल को रीतिकाल कहा जाता हैं . इस काल में अलंकार, रस, नायिका भेद, नख शिख वर्णन छंद आदि काव्यांगों पर प्रचुर रचना हुई है।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. लौकिक श्रृंगारिकता–इस काल के कवियों का मुख्य काव्य रस श्रृंगार रस है। नायिकाओं का नख शिख वर्णन और कटाक्ष वर्णन ही इनका लक्ष्य रहा है। इसी कारण इस काव्य का वर्णन विषयक अधिक विस्तार नहीं पा सका

है। नारी को केवल भोग्या के रूप में देखा गया . वह न किसी की पुत्री थी न किसी की माता ।

2. नायिका भेद

इन कवियों की लेखनी से नायिका भेद सुन्दर वर्णन प्रकाश में आया है . भेद वर्णन अत्यधिक उत्तेजक और कामुक भी है।

3. लक्षण ग्रंथों का निर्माण

इन काल के कवियों को लक्षण ग्रन्थ लिख कर आचार्य का भी कार्य करना पड़ा .किन्तु दोनों कार्यों में एक भी कार्य अच्छी तरह नहीं संपन्न हो सका .इस काल के कुछ कवियों ने लक्षण लिखकर स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत किये .इनमें भूषण, देव आदि मुख्य हैं। दूसरे प्रकार के कवियों में बिहारी प्रमुख हैं जिन्होंने केवल उदाहरण प्रस्तुत किये।

4. अलंकारिकता

इस काल के कवियों को अलंकार प्रिय थे .वे मानते थे – भूषण बिना न सोई, कविता वनिता मित . इस दृष्टि से इन कवियों ने अपनी कविता कामिनी को अलंकर से खूब सजाया है।

5. ब्रज भाषा

इस काल की साहित्यिक भाषा है, जो कोमलता और मधुरता की दृष्टि से सर्वोपरि है। इसी कारण मुसलमान कवियों ने भी इसी भाषा को स्वीकार किया है।

6. मुक्तक कवि

रीति काल में प्रबंध काव्य लिखने का प्रचलन नहीं रह गया है। सभी कवियों ने मुक्तक काव्य शैली को अपनाया है। श्रृंगार वर्णन के लिए यह शैली सर्वाधिक उपयुक्त है। इन कवियों ने दोहा, सोरठा, कविता में अपनी भावनाओं का प्रकाशन किया है। साथ की रीतिकालीन साहित्य में भाव पक्ष की तुलना में काला पक्ष की प्रधानता है। वे अपनी रचनाओं में काव्य के काला पक्ष के इतने आग्रही हो गए थे कि भाव पक्ष की ओर उतना ध्यान ही नहीं गया। कला पक्ष

को सबल बनाने के लिए इन कवियों ने चित्र योजना, अलाकंकार योजना, नाद योजना तथा छंद योजना को महत्त्व दिया।

7. वीररस का प्रवाह

आदिकाल की वीर धारा जो भक्तिकाल में समाप्त हो गयी थी, रीतिकाल में पुनः उसका उत्थान हुआ। भूषण जैसे कवियों ने वीर धारा को राष्ट्रीयता की ओर मोड़ दिया है . ऐसे एतिहासिक पुरुषों को चारित्रिक बनाया गया है, जिन पर हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा का भार था .

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रीतिकाल की श्रृंगारिकता और विलास की प्रवृति जनता के समक्ष कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकी .भाव पक्ष की दृष्टि से यह काव्य अधिक समृद्ध है। डॉ.भागीरथ मिश्र के शब्दों में - इस धारा के कवि ने जीवन के लिए अदम्य वासना जागृत कर दी है, सौन्र्दानुभुती और सुरुचि की सुकुमार कसौटी प्रदान की है। केवल के चेतावनी एक काव्य के सम्बन्ध में दी जा सकती है और वह यह है कि उसे चूने हुए रूप में पढ़ना अधिक श्रेयकर है .

रीतिकालीन काव्य की रचना सामंती परिवेश और छत्रछाया में हुई है इसलिए इसमें वे सारी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो किसी भी सामंती और दरबारी साहित्य में हो सकती हैं। इस प्रकार रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (ritikal ki pramukh pravritiyan) निम्नलिखित हैं-

1. रीति निरूपणलक्षण ग्रंथों की प्रधानता
2. श्रृंगारिकता
3. आलंकारिकता
4. आश्रयदाताओं की प्रशंसाध्राजप्रशस्ति
5. चमत्कार प्रदर्शन एवं बहुज्ञता
6. उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण
7. ब्रज भाषा की प्रधानता
8. भक्ति और नीति
9. मुक्तक शैली की प्रधानता
10. संकुचित जीवन दृष्टि
11. नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण
12. स्थूल एवं मांसल सौंदर्य का अंकन

1. लक्षण ग्रंथों की प्रधानता

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति रीति निरूपण या लक्षण-ग्रंथों का निर्माण है। इन कवियों ने संस्कृत के आचार्यों का अनुकरण पर लक्षण-ग्रंथों अथवा रीति ग्रंथों का निर्माण किया है। फिर भी इन्हें रीति निरूपण में विशेष सफलता नहीं मिली है। इनके ग्रंथ एक तरह से संस्कृत-ग्रंथों में दिए गए नियमों और तत्त्वों का हिंदी पद्य में अनुवाद हैं। जिसमें मौलिकता और स्पष्टता का अभाव है। इन कवियों ने कवि कर्म की अपेक्षा कवि शिक्षक की भूमिका में नजर आते है। रीति निरूपण करने वाले आचार्यों के 2 भेद हैं- सर्वांग और विशिष्टांग निरूपक।

काव्यांग परिचायक कवियों का उद्देश्य काव्यांगों का परिचय देना है। इन्होंने लक्षण ग्रंथों के साथ अन्य कवियों की कविताओं का उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वहीं रीति निरूपण एवं काव्य रचना को बराबर महत्त्व देने वाले कवियों के ग्रंथों में लक्षण और उदाहरण, दोनों उन्हीं के द्वारा रचित है। इनके अलावा तीसरा वर्ग उन कवियों का है, जिन्होंने रीति तत्त्व तो उनके ग्रंथों में मिलता है परंतु काव्यांगों का लक्षण उन्होंने नहीं दिया है।

2. शृंगारिकता

रीतिकाल की दूसरी बड़ी विशेषता शृंगार रस की प्रधानता है। इस काल की कविता में नखशिख और राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है। दरबारी परिवेश के फलस्वरूप नारी केवल पुरुष के रतिभाव का आलम्बन बनकर रह गई। शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन इस युग की कविताओं में हुआ है। शृंगार में आलंबन और उद्दीपन के बड़े ही सरस उदाहरणों का निर्माण हुआ है। संयोग चित्रण में कहीं-कहीं रति चित्रण की वजह से अश्लीलता भी दिखाई देती है, वहीं वियोग वर्णन में कवि-कर्म ऊहात्मक और खिलवाड़ बन कर रह गया है। भागीरथी मिश्र ने इन कवियों के बारे में लिखा है की, 'उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्या आदि उदात्त पक्ष उनकी दृष्टि में बहुत कम आयें हैं।'

रीतिबद्ध कवियों के प्रेम चित्रण में जहाँ रसिकता और कामुकता दिखाई देती है वहीं दूसरी तरफ रीतिमुक्त कवियों के यहाँ प्रेम चित्रण में स्वच्छंदता, उदात्तता एवं अकृत्रिमता दिखाई देती है। रीतिमुक्त कवियों के यहाँ विरह वर्णन

की प्रधानता है परंतु विरह ताप की अतिशयता एवं विरह जन्य उहात्मकता नहीं दिखाई पड़ती।

3. आलंकारिकता

रीति काल की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति आलंकारिकता भी है। इसका कारण राजदरबारों का विलासी वातावरण तथा ये कवि कविता को अलंकारों से सजाने को अपनी सार्थकता भी समझते थे। इस युग के कवियों सभी अलंकारों का निरूपण अपनी कविताओं में किया है। यहाँ कविता साधन न होकर साध्य है है। अधिकतर कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिए, लेकिन बहुतों ने केवल उदाहरण ही लिखे, जबकि उनके मन में लक्षण विद्यमान थे। इस युग में अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि वह साधन न रहकर साध्य हो गया। कभी-कभी केवल अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत अर्थ उसी चमत्कार में कहीं खो जाता है। इस अलंकार प्रेम की वजह से इस दौड़ की कविताएँ विकृति भी हो गया है। यह दोष रीति कालीन कविता में प्रायः दिखाई पड़ता है। केशव को इसी कारण शुक्ल जी ने कठिन काव्य का प्रेत कहा है। केशवदास अलंकार विहीन कविता को काव्य मानते ही नहीं, भले ही उसमें अन्य कितने ही गुण विद्यमान हों।

4. आश्रयदाताओं की प्रशंसा/राजप्रशस्ति

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी कवि थे, राजाओं के आश्रय में रहते थे, इसलिए इन आश्रयदाताओं का गुणगान करना इनकी मजबूरी भी थी। परिणाम स्वरूप इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से किया है, भूषण जैसे कुछ कवि अपवाद हैं। रीतिमुक्त कवियों ने आत्माभिव्यक्ति को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है।

5. चमत्कार प्रदर्शन एवं बहुज्ञता

इस युग के कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के साथ बहुज्ञता का भी प्रदर्शन अपने ग्रंथों में किया है। चमत्कार प्रदर्शन के अंतर्गत विभिन्न अलंकारों के प्रयोग के साथ शब्दों की पच्चीकारी एवं रमणीयता पर ज्यादा ध्यान दिया गया है, वहीं बहुज्ञता को प्रदर्शित करने के लिए साहित्येतर विषयों- ज्योतिष, गणित, काव्य एवं नीतिशास्त्र आयुर्वेद जैसे विषयों को भी अपने काव्य का माध्यम बनाया है।

6. उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण

रीतिकाल (ritikal) में प्रकृति-चित्रण प्रायः उद्दीपन रूप में हुआ है। प्रकृत का स्वतंत्र और आलम्बन रूप में चित्रण बहुत कम हुआ है। दरबारी कवि जिसका आकर्षण केन्द्र नारी थी इसलिए इन कवियों का ध्यान प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर नहीं गया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण भी परम्परागत है। नायक-नायिका की मानसिक दशा के अनुरूप प्रकृति भी संयोग में सुखद एवं वियोग में दुखद रूप में चित्रित हुई है। सेनापति और पद्माकर जैसे कवि इसके अपवाद हैं। क्योंकि सेनापति और पद्माकर के यहाँ वर्षा एवं वसंत ऋतु का आकर्षक वर्णन हुआ है।

7. ब्रजभाषा की प्रधानता

रीति काल ब्रजभाषा का स्वर्ण युग रहा है क्योंकि जहाँ भक्तिकाल में यह भाषा कृष्ण भक्ति कवियों तक सीमित थी वहीं इस काल तक आते-आते पूर्ण रूप से काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। इसके बाद ब्रज भाषा में लगभग 200 वर्षों तक हिंदी कविता पर छाई रही। ब्रज भाषा के प्रभाव का अंदाजा आप इस तरह लगा सकते हैं की इसमें ब्रज के बाहर के कवियों ने भी इसी को अपना काव्य भाषा बनाया। इस युग की कविताओं में आप फारसी के प्रभाव को भी देख सकतें हैं, इसकी वजह उस समय के दरबारी जीवन और सत्ता पर मुसलमान शासकों के आसीन होना प्रमुख वजह है।

8. भक्ति और नीति

रीतिकाल में भले ही रीति निरूपण, शृंगार और अलंकार की प्रधानता हो, व्यापक मात्र में भक्ति और नीति से संबंधित पद भी मिल जाते हैं, जो इस युग की एक नई देन है। राधा-कृष्ण लीलाओं में शृंगारिकता के साथ भक्ति भावना भी विद्यमान है। नगेंद्र ने भी लिखा है की, 'रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है- हो भी नहीं सकता था।' दरबारी वातावरण के परिणाम स्वरूप इनके कविताओं में नीति संबंधी उक्तियाँ भी मिल जाती है। इस क्षेत्र में वृन्द के नीति दोहे, गिरधर की कुंडलियाँ तथा दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

9. मुक्तक शैली की प्रधानता

रीति काल में कुछ प्रबंध काव्य जरूर लिखे गये हैं परंतु मुक्तक-काव्य रूप को प्रधानता मिली है। दरबारी वातावरण में मुक्तक रचनाएँ ही ज्यादा उपयुक्त थीं, क्योंकि राजाओं-सामंतों के पास प्रबंध काव्य को सुनने का न तो समय था न ही धैर्य। अतः इस काल में मुक्तकों (कवित्त और सवैयों) की प्रधानता रही। कवित्त में वीर और शृंगार रसों का प्रयोग तथा सवैयों मेंशृंगार रस का प्रयोग हुआ है। बिहारी जैसे कवियों ने दोहा छंद के सीमित शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की कला को विकसित किया।

10. संकुचित जीवन दृष्टि

रीति काल के कवियों की कविताओं में कोई महान या उच्च उदेश्य नहीं दिखाई देता है, अधिकतर कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए शृंगार और मनोरंजन पूर्ण काव्य की रचना की। रीति कालीन कवियों के यहाँ उत्तम काव्य रचना के लिए जीवन के प्रति जिस व्यापक दृष्टिकोण की अपेक्षा की जाती है उसका नितांत अभाव दिखाई देता है। दरबारी परिवेश और विलासिता पूर्ण जीवन की वजह से इनका दृष्टि इतना संकुचित हो गया की जीवन के विविध पहलू छूट गये।

11. नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण

रीतिकालीन कवियों के यहाँ नायिका के नख-शिख वर्णन व्यापक पैमाने पर हुआ है। नारी के वाह्य रूप, स्थूल एवं माँसल चित्रण में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। यह परिवेश ही ऐसा था जहाँ स्त्री को भोग-विलास की वस्तु समझा जाता था, कामुक दृष्टि से देखा जाता था। इसीलिए स्त्रियों के दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलू छूट गये हैं और इन कवियों का दृष्टि एकांगी हो गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है।'

12. स्थूल एवं मांसल सौंदर्य का अंकन

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के यहाँ स्थूल एवं माँसल सौंदर्य का वर्णन हुआ है, लेकिन रीतिमुक्त कवियों के यहाँ सौंदर्य सूक्ष्म एवं मनोरम वर्णन दिखाई पड़ता है।

भक्ति और शृंगार की विभाजक रेखा सूक्ष्म है। भक्ति की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र एवं दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया. कबीर जैसे बीहड़ कवि भी भाव-विभोर हो कह उठते हैं– "हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया". मर्यादावादी तुलसी भी निकटता को व्यक्त करने के लिए "कामिनि नारि पिआरि जिमि" जैसी उपमा देते हैं। कालांतर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप से हट गए और वे महज दांपत्य जीवन के प्रतीक बन कर रह गए. प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई और प्रेम शृंगारिक रूप में केन्द्र में आ गया। भक्ति काल का रीतिकाल में रूपांतरण की यही प्रक्रिया है।

रीतिकालीन काव्य की मूल प्रेरणा ऐहिक है। भक्तिकाल की ईश्वर-केन्द्रित दृष्टि के सामने इस मानव केन्द्रित दृष्टि की मौलिकता एवं साहसिकता समझ में आती है। आदिकालीन कवि अपने नायक को ईश्वर के जैसा महिमावान अंकित किया था। भक्त कवियों ने ईश्वर की नर लीला का चित्रण किया तो रीतिकालीन कवियों ने ईश्वर एवं मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण किया. भक्त कवि तुलसीदास लिखते हैं–

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ
मति अनुरूप राम गुन गाउँ.

परन्तु भिखारीदास का कहना है–

आगे की कवि रीझिहैं तौ कविताई, न तौ
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो हैं।

एक के लिए भक्ति प्रधान है, इस प्रक्रिया में कविता भी बन जाए तो अच्छा है। कवि तो राम का गुण-गान करता है। वहीं दूसरे के लिए कविता की रचना महत्त्वपूर्ण है। यदि कविता न बन सके तो उसे राधा-कृष्ण का स्मरण मान लिया जाए।

सम्पूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त. वास्तव में रीतिबद्ध कवि रीतिसिद्ध भी थे और रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध भी। इस युग के राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना या काव्य-रसिक समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। अतः इनकी सबसे प्रमुख विशेषता व प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी। इसके साथ ही आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के

लिए श्रृंगारिक रचनाएँ भी की। अत:श्रृंगारिकता भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी. इधर आश्रयदाता राजाओं के दान, पराक्रम आदि को आलंकारिक करने से उन्हें धन-सम्मान मिलता था। वहीं धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएँ करने से आत्म लाभ होता था। इस प्रकार राज-प्रशस्ति एवं भक्ति भी इनकी इनकी प्रवृत्तियों के रूप में परिगणित होती है। दूसरी ओर इन कवियों ने अपने कटु-मधुर व्यक्तिगत अनुभवों को भी समय-समय पर नीतिपरक अभिव्यक्ति प्रदान किया. अत: नीति इनकी कविता का अंग कही जा सकती है।

डॉ. नगेन्द्र ने रीति-कवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में रखा है–

क. मुख्य प्रवृत्ति

ख. गौण प्रवृत्ति

मुख्य प्रवृत्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. रीति-निरूपण
2. श्रृंगारिकता

और गौण प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है–

1. राजप्रशस्ति या वीर काव्य
2. भक्ति
3. नीति

रीति-निरूपण

रीतिकालीन कवियों के रीति-निरूपण की शैलियों का अध्ययन करने पर तीन दृष्टियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रथम दृष्टि तो मात्र रीति-कर्म की है। इनमें वे ग्रंथ आते हैं जिनमें सामान्य रूप से काव्यांग-विशेष का परिचय कराना ही कवि का उद्देश्य है, अपने कवित्व का परिचय देना नहीं. ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण या तो अन्य रचनाकारों के काव्य से दिया गया है या इतना संक्षिप्त है कि कवित्व जैसी कोई बात ही नहीं है। राजा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक ग्रंथ हैं।

द्वितीय प्रवृत्ति में रीति-कर्म और कवि-कर्म का समान महत्त्व रहा है। इसके अंतर्गत लक्षण एवं उदाहरण दोनों उनके रचयिताओं द्वारा रचित है तथा

उदाहरण में सरसता का पुट मिला हुआ है। देव, मतिराम, केशव, पद्माकर, कुलपति, भूषण आदि के ग्रंथ इसी श्रेणी में आते हैं।

तीसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत लक्षणों को महत्त्व नहीं दिया गया है। कवियों ने प्रायः सभी छंदों की रचना काव्यशास्त्र के नियमों से बद्ध होकर ही किया है, लेकिन लक्षणों को त्याग दिया है। बिहारी, मतिराम आदि की सतसइयाँ, नख-सिख वर्णन संबंधी समस्त ग्रंथ इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

काव्यांग-विवेचन के आधार पर इसकी दो अंतः प्रवृत्तियाँ ठहरती हैं।

1. सर्वांग विवेचन
2. विशिष्टांग विवेचन

सर्वांग विवेचन प्रवृत्ति के अंतर्गत आने वाले ग्रंथों में कवियों ने सामान्यतः काव्य-हेतु, काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्यशक्ति, काव्य-रीति, अलंकार, छंद आदि का निरूपण किया है। चिंतामणि का 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्दरसायन', कुलपति का 'रसरहस्य', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि इसी प्रवृत्ति के ग्रंथ हैं।

विशिष्टांग विवेचन की प्रवृत्ति के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं, जिनमें किसी एक या दो या तीन का विवेचन किया गया है। ये विषय हैं– रस, छंद और अलंकार. इनमें रस-निरूपण की प्रवृत्ति इन कवियों में सर्वाधिक देखने को मिलती है।श्रृंगार को रसराज के रूप में निरूपित करने का भाव सर्वाधिक है।

विवेचन-शैली के आधार पर इस काल में रीति-निरूपण की मुख्य तीन शैलियां प्रचलित हैं।

प्रथम 'काव्यप्रकाश'-'साहित्यदर्पण' की शैली है। इसके अंतर्गत चिंतामणि के 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्दरसायन', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि को रखा जाता है। इसमें मम्मट-विश्वनाथ द्वारा दी गई संस्कृत-गद्य की वृत्ति के समान ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाया गया है।

दूसरी शैली 'चन्द्रालोक'-'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली है। जसवंत सिंह की 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इस शैली के ग्रंथ हैं।

तीसरी शैली भानुदत्त की 'रसमंजरी' की है। इसमें लक्षण एवं सरस उदाहरण देकर विषय-निरूपण किया गया है।

शृंगारिकता

श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों का प्राण है। एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों का निर्वाह और दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे दूसरे कवियों की शृंगारिकता से पृथक करके देखा जा सकता है।

शास्त्रीय बंधनों ने इतना रूढ़ बना दिया है किशृंगार के विभाव पक्ष में नायक-नायिका के भेद तथा उद्दीपक सामग्री के प्रत्येक अंग, अनुभवों के विविध रूप, वियोग के भेदोपभेद-सहित विभिन्न कामदशाओं संबंधी रचनाओं के अलग-अलग वर्ग बनाये जा सकते हैं।

दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट एवं आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण ये कवि अपनी कल्पना के पंख इतने फैला सके हैं कि शास्त्रीय घेरे के भीतर निर्माताओं की अभिरूचि एंव दृष्टि की व्यंजना उनकी इस प्रवृत्ति की विशेषता प्रकट हो जाती है। इन कवियों कीशृंगार भावना में दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की कुंठा न होकर शरीर-सुख की वह साधना है, जिसमें विलास के सभी उपकरणों के संग्रह की ओर व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित होती है। इनके प्रेम-भावना में एकोन्मुखता का स्थान अनेकोन्मुखता ने इस प्रकार ले लिया है कि कुंठारहित प्रेम की उन्मुक्तता व रसिकता का रूप धारण कर गई है। यही कारण है कि उनके पत्नियों के बीच अकेला नायक किसी मानसिक तनाव का शिकार नहीं होता बल्कि निर्द्वन्द्व होकर भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतिकवियों की शृंगारिकता में सामान्य रूप से कुंठाहीनता, शारीरिक सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेमजन्य रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण आदि शास्त्रीय बंधनों में बँधकर भी पाठकों को आत्मविभोर कर सकती हैं।

राजप्रशस्ति

यह प्रवृत्ति आश्रयदाताओं की दान-वीरता और युद्धवीरता के वर्णन में दृष्टिगोचर होती है। इनकी अभिव्यक्ति में सामान्य रूप से दान की सामग्री की प्रचुरता और आश्रयदाताओं के आतंक के प्रभाव के वर्णनों के कारण वैसा रसात्मक प्रभाव नहीं डाल पाती. यह राजाओं की झूठी प्रशस्ति का ही प्रभाव छोड़ता है। इनमें उत्साह का अभाव ही रहा है।

भक्ति

भक्ति की प्रवृत्ति ग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति एवं शांत रस के उदाहरणों में मिलती है। ये कवि राम-कृष्ण के साथ गणेश, शिव और शक्ति में समान श्रद्धा व्यक्त करते पाये जाते हैं। अतः यह माना जा सकता है कि किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी। वास्तव में इय समय भक्ति धार्मिकता का परिचायक नहीं थी बल्कि विलास से जर्जर दरबारी वातावरण से बाहर आकुल मन की शरणभूमि थी।

नीति

भक्ति इनके आकुल मन शरणस्थली थी तो नीति-निरूपण दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के लिए शाँति का आधार. यही कारण है कि आत्मोपदेशों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्रायः देखने को मिल जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गौण-प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति, श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में 'प्रवृत्ति' की परिचायक है, जबकि भक्ति एंव नीति ने उससे निवृत्ति की।

6

रीतिकाल के कवि

घनानन्द

घनानंद (1673 - 1760) रीतिकाल की तीन प्रमुख काव्यधाराओं- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के अंतिम काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। ये 'आनंदघन' नाम स भी प्रसिद्ध हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानन्द का समय सं. 1746 तक माना है। इस प्रकार आलोच्य घनानन्द वृंदावन के आनन्दघन हैं। शुक्ल जी के विचार में ये नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गए। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत भी इनसे मिलता है। लगता है, कवि का मूल नाम आनन्दघन ही रहा होगा, परंतु छंदात्मक लय-विधान इत्यादि के कारण ये स्वयं ही आनन्दघन से घनानन्द हो गए। अधिकांश विद्वान घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आस-पास का होना मानते हैं।

जीवन परिचय

अनुमान से इनका जन्मकाल संवत 1730 के आस-पास है। इनके जन्मस्थान और जनक के नाम अज्ञात हैं। आरंभिक जीवन दिल्ली तथा उत्तर जीवन वृंदावन में बीता। जाति के कायस्थ थे। साहित्य और संगीत दोनों में इनकी असाधारण गति थी।

कहा जाता है कि ये शाहंशाह मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में मीरमुंशी थे और 'सुजान' नामक नर्तकी पर आसक्त थे। एक दिन दरबारियों ने बादशाह से कह दिया कि मुंशी जी गाते बहुत अच्छा हैं। उसने इनका गाना सनने की हठ पकड़ ली। पर ये गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में बादशाह से कहा गया था कि यदि सुजान बुलाई जाय तो ये गाना सुनाएँगे। वह बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने आज्ञा की अवहेलना के अपराध में इन्हें दिल्ली से निष्कासित कर दिया। सुजान ने इनका साथ नहीं दिया। वहाँ से वे वृंदावन चले गए और निंबार्क संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव से दीक्षा ग्रहण की। इनका सखीभावसूचक नाम 'बहुगुनी' था।

भगवान् कृष्ण के प्रति अनुरक्त होकर वृंदावन में उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ली और अपने परिवार का मोह भी इन्होंने उस भक्ति के कारण त्याग दिया। मरते दम तक वे राधा-कृष्ण सम्बंधी गीत, कवित्त-सवैये लिखते रहे। कवि घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मुंशी थे। कहते हैं कि सुजान नाम की एक स्त्री से उनका अटूट प्रेम था। उसी के प्रेम के कारण घनानंद बादशाह के दरबार में बे-अदबी कर बैठे, जिससे नाराज होकर बादशाह ने उन्हें दरबार से निकाल दिया। साथ ही घनानंद को सुजान की बेवफाई ने भी निराश और दुखी किया। वे वृंदावन चले गए और निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित होकर भक्त के रूप में जीवन-निर्वाह करने लगे। परंतु वे सुजान को भूल नहीं पाए और अपनी रचनाओं में सुजान के नाम का प्रतीकात्मक प्रयोग करते हुए काव्य-रचना करते रहे। घनानंद मूलतः प्रेम की पीड़ा के कवि हैं। वियोग वर्णन में उनका मन अधिक रमा है।

ये प्रेमसाधना का अत्यधिक पथ पार कर बड़े बड़े साधकों की कोटि में पहुँच गए थे। यमुना के कछारों और ब्रज की वीथियों में भ्रमण करते समय ये कभी आनंदातिरेक में हँसने लगते और कभी भावावेश में अश्रु की धारा इनके नेत्रों से प्रवाहित होने लगती। नागरीदास जैसे श्रेष्ठ महात्मा इनका बड़ा संमान करते थे।

मथुरा पर अहमदशाह अब्दाली के प्रथम आक्रमण के समय, सं. 1813 में, ये मार डाले गए। विश्वनाथप्रसाद मिश्र के मतानुसार उनकी मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के मथुरा पर किए गए द्वितीय आक्रमण में हुई थी।

रचनाएँ

घनानंद द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 41 बताई जाती है–

सुजानहित, कृपाकंदनिबंध, वियोगबेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेमसरोवर, व्रजविलास, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, प्रेमपद्धति, वृषभानुपुर सुषमा, गोकुलगीत, नाममाधुरी, गिरिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावनाप्रकाश, कृष्णकौमुदी, घामचमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृंदावनमुद्रा, व्रजस्वरूप, गोकुलचरित्र, प्रेमपहेली, रसनायश, गोकुलविनोद, मुरलिकामोद, मनोरथमंजरी, व्रजव्यवहार, गिरिगाथा, व्रजवर्णन, छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कबित्तसंग्रह, स्फुट पदावली और परमहंसवंशावली।

इनका 'व्रजवर्णन' यदि 'व्रजस्वरूप' ही है तो इनकी सभी ज्ञात कृतियाँ उपलब्ध हो गई हैं। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कबित्तसंग्रह–स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं, फुटकल रचनाओं के छोटे छोटे संग्रह है। इनके समसामयिक व्रजनाथ ने इनके 500 कवित्त सवैयों का संग्रह किया था। इनके कबित्त का यह सबसे प्राचीन संग्रह है। इसके आरंभ में दो तथा अंत में छः कुल आठ छंद व्रजनाथ ने इनकी प्रशस्ति में स्वयं लिखे। पूरी 'दानघटा' श्घनआनंद कबित्त' में संख्या 402 से 414 तक संगृहीत है। परमहंसवंशावली में इन्होंने गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। इनकी लिखी एक फारसी मसनवी भी बतलाई जाती है पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

घनानंद ग्रंथावली में उनकी 16 रचनाएँ संकलित हैं। घनानंद के नाम से लगभग चार हजार की संख्या में कवित्त और सवैये मिलतें हैं। इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'सुजान हित' है, जिसमें 507 पद हैं। इन में सुजान के प्रेम, रूप, विरह आदि का वर्णन हुआ है। सुजान सागर, विरह लीला, कृपाकंड निबंध, रसकेलि वल्ली आदि प्रमुख हैं। उनकी अनेक रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है।

काव्यगत विशेषताएँ

हिंदी के मध्यकालीन स्वच्छंद प्रवाह के प्रमुख कर्ताओं में सबसे अधिक साहित्यश्रुत घनआनंद ही प्रतीत होते है। इनकी रचना के दो प्रकार हैं–एक में प्रेमसंवेदना क अभिव्यक्ति है, और दूसरे में भक्तिसंवेदना की व्यक्ति। इनकी रचना अभिधा के वाच्य रूप में कम, लक्षणा के लक्ष्य और व्यंजना के व्यंग्य

रूप में अधिक है। ये भाषाप्रवीण भी थे और व्रजभाषाप्रवीण भी। इन्होंने व्रजभाषा के प्रयोगों के आधार पर नूतन वाग्योग संघटित किया है।

उनकी रचनाओं में प्रेम का अत्यंत गंभीर, निर्मल, आवेगमय और व्याकुल कर देने वाला उदात्त रूप व्यक्त हुआ है, इसीलिए घनानंद को 'साक्षात रसमूर्ति' कहा गया है। घनानंद के काव्य में भाव की जैसी गहराई है, वैसी ही कला की बारीकी भी। उनकी कविता में लाक्षणिकता, वक्रोक्ति, वाग्विदग्धता के साथ अलंकारों का कुशल प्रयोग भी मिलता है। उनकी काव्य-कला में सहजता के साथ वचन-वक्रता का अद्‌भुत मेल है। घनानंद की भाषा परिष्कृत और साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें कोमलता और मधुरता का चरम विकास दिखाई देता है। भाषा की व्यंजकता बढ़ाने में वे अत्यंत कुशल थे। वस्तुतः वे ब्रजभाषा प्रवीण ही नहीं सर्जनात्मक काव्यभाषा के प्रणेता भी थे।

कलापक्ष

घनानंद भाषा के धनी थे। उन्होंने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। रीतिकाल की यही प्रमुख भाषा थी। इनकी ब्रजभाषा अरबी, फारसी, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि के शब्दों से समृद्ध है। उन्होंने सरल-सहज लाक्षणिक व्यंजनापूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। घनानंद ने लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा सौंदर्य को चार चाँद लगा दिए हैं। घनानंद ने अपने काव्य में अलंकारो का प्रयोग अत्यंत सहज ढंग से किया है। उन्होंने काव्य में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा एवं विरोधाभास आदि अलंकारो का प्रयोग बहुलता के साथ हुआ है। 'विरोधाभास ' घनानंद का प्रिय अलंकर है। आचार्य विश्वनाथ ने उनके बारे में लिखा है-

विरोधाभास के अधिक प्रयोग से उनकी कविता भरी पड़ी है। जहाँ इस प्रकार की कृति दिखाई दे, उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।

छंद-विधान

छंद-विधान की दृष्टि से घनानंद ने कवित्त और सवैये ही अधिक लिखे हैं। वैसे उन्होंने दोहे और चौपाइयाँ भी लिखी हैं। रस की दृष्टि से घनानंद का काव्य मुख्यतःशृंगार रस प्रधान है। इनमें वियोगशृंगार की प्रधानता है। कहीं-कहीं

शांत रस का प्रयोग भी देखते बनता है। घनानंद को भाषा में चित्रत्मकता और वाग्विदग्धता का गुण भी आ गया है।

कवित्त व सवैया

इन पदों में सुजान के प्रेम रूप विरह आदि का वर्णन हुआ है।

नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस,

इते पैर एक सी बाट चहों।

घनानंद नायिका सुजान का वर्णन अत्यंत रूचिपूर्वक करतें हैं। वे उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देतें हैं।

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।

त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहू नहिं आनि तिहारिये।

घनानंद प्रेम के मार्ग को अत्यंत सरल बताते हैं, इन में कहीं भी वक्रता नहीं है।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।

कवि अपनी प्रिया को अत्यधिक चतुराई दिखाने के लिए उलाहना भी देता है।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहूं पै देहूं छटांक नहीं।

कवि अपनी प्रिया को प्रेम पत्र भी भिजवाता है पर उस निष्ठुर ने उसे पढ़कर देखा तक नहीं।

जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यो।

रूप सौंदर्य का वर्णन करने में कवि घनानंद का कोई सानी नहीं है। वह काली साड़ी में अपनी नायिका को देखकर उन्मत्त सा हो जातें हैं। सावँरी साड़ी ने सुजान के गोरे सरीर को कितना कांतिमान बना दिया हैं।

स्याम घटा लिपटी थिर बीज की सौहैं अमावस-अंक उजयारी।

धूम के पुंज में ज्वाल की माल पै द्विग-शीतलता-सुख-कारी।

कै छबि छायौ सिंगार निहारी सुजान-तिया-तन-दीपति-त्यारी।

कैसी फबी घनानन्द चोपनि सों पहिरी चुनी सावँरी सारी।

घनानंद के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है- भाव प्रवणता के अनुरूप अभिव्यक्ति की स्वाभाविक वक्रता। घनानंद का प्रेम लौकिक प्रेम की भाव भूमि से उपर उठकर आलौकिक प्रेम की बुलंदियों को छुता हुआ नजर आता है, तब

कवि की प्रियासुजान ही परब्रह्म का रूप बन जाती है। ऐसी दशा में घनानंद प्रेम से उपर उठ कर भक्त बन जाते हैं।

नेही सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर
नहि और ठौर, काहि सांकरे समहारिये

कवित्त

बहुत दिनान को अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठी जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।
झूटी बतियानि की पतियानि तें उदास हैव कै,
अब न घिरत घन आनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों लै सुजान को।।

7

बिहारी

बिहारीलाल चौबे या बिहारी हिंदी के रीति काल के प्रसिद्ध कवि थे।

जीवन परिचय

बिहारीलाल का जन्म संवत् 1603 ई. ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे (चतुर्वेदी) थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। जब बिहारी 8 वर्ष के थे तब इनके पिता इन्हे ओरछा ले आये तथा उनका बचपन बुंदेलखंड में बीता। इनके गुरु नरहरिदास थे और युवावस्था ससुराल मथुरा में व्यतीत हुई, जैसे की निम्न दोहे से प्रकट है –

जन्म ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल।
तरुनाई आई सुघर मथुरा बसि ससुराल।।

जयपुर-नरेश सवाई राजा जयसिंह अपनी नयी रानी के प्रेम में इतने डूबे रहते थे कि वे महल से बाहर भी नहीं निकलते थे और राज-काज की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। मंत्री आदि लोग इससे बड़े चिंतित थे, किंतु राजा से कुछ कहने को शक्ति किसी में न थी। बिहारी ने यह कार्य अपने ऊपर लिया। उन्होंने निम्नलिखित दोहा किसी प्रकार राजा के पास पहुंचाया –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।

इस दोहे ने राजा पर मंत्र जैसा कार्य किया। वे रानी के प्रेम-पाश से मुक्त होकर पुनः अपना राज-काज संभालने लगे। वे बिहारी की काव्य कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बिहारी से और भी दोहे रचने के लिए कहा और प्रति दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रा देने का वचन दिया। बिहारी जयपुर नरेश के दरबार में रहकर काव्य-रचना करने लगे, वहां उन्हें पर्याप्त धन और यश मिला।

बिहारी की एकमात्र रचना सतसई (सप्तशती) है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें 713 दोहे संकलित हैं। कतिपय दोहे संदिग्ध भी माने जाते हैं। सभी दोहे सुंदर और सराहनीय हैं तथापि तनिक विचारपूर्वक बारीकी से देखने पर लगभग 200 दोहे अति उत्कृष्ट ठहरते हैं। 'सतसई' में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा ही उस समय उत्तर भारत की एक सर्वमान्य तथा सर्व-कवि-सम्मानित ग्राह्य काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। इसका प्रचार और प्रसार इतना हो चुका था कि इसमें अनेकरूपता का आ जाना सहज संभव था। बिहारी ने इसे एकरूपता के साथ रखने का स्तुत्य सफल प्रयास किया और इसे निश्चित साहित्यिक रूप में रख दिया। इससे ब्रजभाषा मँजकर निखर उठी।

सतसई को तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं- नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भावपरक, तथा। श्रृंगारपरक। इनमें से श्रृंगारात्मक भाग अधिक है। कला-चमत्कार सर्वत्र चातुर्य के साथ प्राप्त होता है।

श्रृंगारात्मक भाग में रूपांग सौंदर्य, सौंदर्योपकरण, नायक-नायिकाभेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है। नायक-नायिका निरूपण भी मुख्तः तीन रूपों में मिलता है- प्रथम रूप में नायक कृष्ण और नायिका राधा है। इनका चित्रण करते हुए धार्मिक और दार्शनिक विचार को ध्यान में रखा गया है। इसलिए इसमें गूढ़ार्थ व्यंजना प्रधान है, और आध्यात्मिक रहस्य तथा धर्म-मर्म निहित है, द्वितीय रूप में राधा और कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया किंतु उनके आभास की प्रदीप्ति दी गई है और कल्पनादर्श रूप रौचिर्य रचकर आदर्श चित्र विचित्र व्यंजना के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। इससे इसमें लौकिक वासना का विलास नहीं मिलता। तृतीय रूप में लोक संभव नायक नायिका का स्पष्ट चित्र है। इसमें भी कल्पना कला कौशल और कवि परंपरागत आदर्शों का पुट पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। नितांत लौकिक रूप बहुत ही न्यून और बहुत ही कम है।

'सतसई' के मुक्तक दोहों को क्रमबद्ध करने के प्रयास किए गए हैं। 25 प्रकार के क्रम कहे जाते हैं जिनमें से 14 प्रकार के क्रम देखे गए हैं, शेष 11

प्रकार के क्रम जिन टीकाओं में हैं, वे प्राप्त नहीं। किंतु कोई निश्चित क्रम नहीं दिया जा सका। वस्तुत: बात यह जान पड़ती है कि ये दोहे समय-समय पर मुक्तक रूप में ही रचे गए, फिर चुन चुनकर एकत्रित कर संकलित कर दिए गए। केवल मंगलाचरणात्मक दोहों के विषय में भी इसी से विचार वैचित्य है। यदि 'मेरी भव बाधा हरौ' इस दोहे को प्रथम मंगलाचरणात्मक अर्थात् केवल राधोपासक होने का विचार स्पष्ट होता है और यदि 'मोर मुकुट कटि काछिनि'-इस दोहे को लें, तो केवल एक विशेष बानकवाली कृष्णमूर्ति ही बिहारी की अभीष्टोपास्य मूर्ति मुख्य ठहरती हैं - बिहारी वस्तुत: कृष्णोपासक थे, यह स्पष्ट है।

सतसई के देखने से स्पष्ट होता है कि बिहारी के लिए काव्य में रस और अलंकार चातुर्य चमत्कार तथा कथन कौशल दोनों ही अनिवार्य और आवश्यक हैं। उनके दोहों को दो वर्गों में इस प्रकार भी रख सकते हैं, एक वर्ग में वे दोहे आएँगें जिनमें रस रौचिर्य का प्राबल्य है और रसात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा गया है। अलंकार चमत्कार इनमें भी है किंतु विशेष प्रधान नहीं, वरन् रस परिपोषकता और भावोत्कर्षकता के लिए ही सहायक रूप में यह है।

दूसरे वर्ग में वे दोहे हैं जिनमें रसात्मकता को विशेषता नहीं दी गई वरन् अलंकार चमत्कार और वचनचातुरी अथवा कथन-कलाकौशल को ही प्रधानता दी गई है। किसी विशेष अलंकार को उक्तिवैचित्र्य के साथ सफलता से निबाहा गया है। इस प्रकार देखते हुए भी यह मानना पड़ता है कि अलंकार चमत्कार को कहीं नितांत भुलाया भी नहीं गया। रस को उत्कर्ष देते हुए भी अलंकार कौशल का अपकर्ष भी नहीं होने दिया गया। इस प्रकार कहना चाहिए कि बिहारी रसालंकारसिद्ध कवि थेय रससिद्ध ही नहीं।

नीति विषयक दोहों में वस्तुत: सरसता रखना कठिन होता है, उनमें उक्तिऔचित्य और वचनवक्रता के साथ चारु चातुर्य चमत्कार ही प्रभावोत्पादक और ध्यानाकर्षण में सहायक होता है। यह बात नीतिपरक दोहों में स्पष्ट रूप से मिलती है। फिर भी बिहारी ने इनमें सरसता का सराहनीय प्रयास किया है।

ऐसी ही बात दार्शनिक सिद्धांतों और धार्मिक भाव मर्मों के भी प्रस्तुत करने में आती है क्योंकि उनमें अपनी विरसता स्वभावत: रहती है। फिर भी बिहारी ने उन्हें सरसता के साथ प्रस्तुत करने में सफलता पाई है।

भक्ति के हार्दिक भाव बहुत ही कम दोहों में दिखाई पड़ते हैं। समयावस्था विशेष में बिहारी के भावुक हृदय में भक्तिभावना का उदय हुआ और उसकी

अभिव्यक्ति भी हुई। बिहारी में दैन्य भाव का प्राधान्य नहीं, वे प्रभु प्रार्थना करते हैं, किंतु अति हीन होकर नहीं। प्रभु की इच्छा को ही मुख्य मानकर विनय करते हैं।

बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध कविवरों की मुक्तक रचनाओं, जैसे आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती, अमरुकशतक आदि से मूलभाव लिए हैं– कहीं उन भावों को काट छाँटकर सुंदर रूप दिया है, कहीं कुछ उन्नत किया है और कहीं ज्यों का त्यों ही सा रखा है। सौंदर्य यह है कि दीर्घ भावों को संक्षिप्त रूप में रम्यता के साथ अपनी छाप छोड़ते हुए रखने का सफल प्रयास किया गया है।

टीकाएँ

'सतसई' पर अनेक कवियों और लेखकों ने टीकाएँ लिखीं। कुल 54 टीकाएँ मुख्य रूप से प्राप्त हुई हैं। रत्नाकर जी की बिहारी रत्नाकर नामक एक अंतिम टीका है, यह सर्वांग सुंदर है। सतसई के अनुवाद भी संस्कृत, उर्दू (फारसी) आदि में हुए हैं और कतिपय कवियों ने सतसई के दोहों को स्पष्ट करते हुए कुंडलिया आदि छंदों के द्वारा विशिष्टीकृत किया है। अन्य पूर्वापरवर्ती कवियों के साथ भावसाम्य भी प्रकट किया गया है। कुछ टीकाएँ फारसी और संस्कृत में लिखी गई हैं। टीकाकारों ने सतसई में दोहों के क्रम भी अपने अपने विचार से रखे हैं। साथ ही दोहों की संख्या भी न्यूनाधिक दी है। यह नितांत निश्चित नहीं कि कुल कितने दोहे रचे गए थे। संभव है, जो सतसई में आए वे चुनकर आए कुल दोहे 700 से कहीं अधिक रचे गए होंगे। सारे जीवन में बिहारी ने इतने ही दोहे रचे हों, यह सर्वथा मान्य नहीं ठहरता।

श्सतसई' पर कतिपय आलोचकों ने अपनी आलोचनाएँ लिखी हैं। रीति काव्य से ही इसकी आलोचना चलती आ रही है। प्रथम कवियों ने सतसई की मार्मिक विशेषता को सांकेतिक रूप से सूचित करते हुए दोहे और छंद लिखे। उर्दू के शायरों ने भी इसी प्रकार किया। यथा –

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत मैं छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।

बिहारी की बलागत और ब्रजभाषा की शीरीनी हमें तारीफ करने के लिए मजबूर करती है।

इस प्रकार की कितनी ही उक्तियाँ प्रचलित हैं। विस्तृत रूप में सतसई पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी इधर कई लिखी गई हैं। साथ ही आधुनिक काल में

इसकी कई टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इनकी तुलना विशेश रूप से कविवर देव से की गई और एक ओर देव को, दूसरी ओर बिहारी को बढ़कर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। दो पुस्तकें, 'देव और बिहारी' पं. कृष्णबिहारी मिश्र लिखित तथा 'बिहारी और देव' लाला भगवानदीन लिखित उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर जी के द्वारा संपादित 'बिहारी रत्नाकर' नामक टीका और 'कविवर बिहारी' नामक आलोचनात्मक विवेचन विशेष रूप में अवलोकनीय और प्रामाणिक हैं।

काव्यगत विशेषताएँ

वर्णय विषय

बिहारी की कविता का मुख्य विषयश्रृंगार है। उन्होंनेश्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारी ने हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया हैं। उसमें बड़ी मार्मिकता है। संयोग का एक उदाहरण देखिए –

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सोह करे, भौंहनु हंसे दैन कहे, नटि जाय।।

बिहारी का वियोग वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण है। यही कारण है कि उसमें स्वाभाविकता नहीं है, विरह में व्याकुल नायिका की दुर्बलता का चित्रण करते हुए उसे घड़ी के पेंडुलम जैसा बना दिया गया है –

इति आवत चली जात उत, चली, छसातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।

सूफी कवियों की अहात्मक पद्धति का भी बिहारी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वियोग की आग से नायिका का शरीर इतना गर्म है कि उस पर डाला गया गुलाब जल बीच में ही सूख जाता है –

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह विथा विलसात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटों छुयो न गात।।

भक्ति-भावना

बिहारी मूलत: श्रृंगारी कवि हैं। उनकी भक्ति-भावना राधा-कृष्ण के प्रति है और वह जहां तहां ही प्रकट हुई है। सतसई के आरंभ में मंगला-चरण का यह दोहा राधा के प्रति उनके भक्ति-भाव का ही परिचायक है –

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परे, स्याम हरित दुति होय।।

बिहारी ने नीति और ज्ञान के भी दोहे लिखे हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। धन-संग्रह के संबंध में एक दोहा देखिए -

मति न नीति गलीत यह, जो धन धरिये जोर।
खाये खर्चे जो बचे तो जोरिये करोर।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण में बिहारी किसी से पीछे नहीं रहे हैं। षट तुओं का उन्होंने बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। ग्रीष्म तु का चित्र देखिए -

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोतन से कियो, दरिघ दाघ निदाघ।।

बिहरि गाँव वालो कि अरसिक्त का उपहास करते हुए कहते हैं-

कर फुलेल को आचमन मिथो कहत सरहि।
रे गन्ध मतिहीन इत्र दिखवत काहि।।

बहुज्ञता

बिहारी को ज्योतिष, वैद्यक, गणित, विज्ञान आदि विविध विषयों का बड़ा ज्ञान था। अत: उन्होंने अपने दोहों में उसका खूब उपयोग किया है। गणित संबंधी तथ्य से परिपूर्ण यह दोहा देखिए -

कहत सवै वेदीं दिये आंगु दस गुनो होतु।
तिय लिलार बेंदी दियैं अगिनतु बढत उदोतु।।

भाषा

बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है। इसमें सूर की चलती ब्रज भाषा का विकसित रूप मिलता है। पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसै आदि के शब्द भी उसमें आए हैं, किंतु वे लटकते नहीं हैं। बिहारी का शब्द चयन बड़ा सुंदर और सार्थक है। शब्दों का प्रयोग भावों के अनुकूल ही हुआ है और उनमें एक भी शब्द भारती का प्रतीत नहीं होता। बिहारी ने अपनी भाषा में कहीं-कहीं मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग किया है। जैसे -

मूड चढाऐऊ रहै फरयौ पीठि कच-भारु।
रहै गिरैं परि, राखिबौ तऊ हियैं पर हारु।।

शैली

विषय के अनुसार बिहारी की शैली तीन प्रकार की है

1. माधुर्य पूर्ण व्यंजना प्रधानशैली -शृंगार के दोहों में।
2. प्रसादगुण से युक्त सरस शैली - भक्ति तथा नीति के दोहों में।
3. चमत्कार पूर्ण शैली - दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि विषयक दोहों में।

रस

बिहारी के काव्य में शांत, हास्य, करुण आदि रसों के भी उदाहरण मिल जाते हैं, किंतु मुख्य रसशृंगार ही है।

छंद

बिहारी ने केवल दो ही छंद अपनाए हैं, दोहा और सोरठा। दोहा छंद की प्रधानता है। बिहारी के दोहे समास-शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। दोहे जैसे छोटे छंद में कई-कई भाव भर देना बिहारी जैसे कवि का ही काम था।

अलंकार

अलंकारों की कारीगरी दिखाने में बिहारी बड़े पटु हैं। उनके प्रत्येक दोहे में कोई न कोई अलंकार अवश्य आ गया है। किसी-किसी दोहे में तो एक साथ कई-कई अलंकारों को स्थान मिला है। अतिशयोक्ति, अन्योक्ति और सांगरूपक बिहारी के विशेष प्रिय अलंकार हैं अन्योक्ति अलंकार का एक उदाहरण देखिए-

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर तू पच्छीनु न मारि।।
मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरी सोइ।
जा तन की झाई पारे, श्यामु-हरित-दुति होइ ।।

साहित्य में स्थान

किसी कवि का यश उसके द्वारा रचित ग्रंथों के परिमाण पर नहीं, गुण पर निर्भर होता है। बिहारी के साथ भी यही बात है। अकेले सतसई ग्रंथ ने उन्हें

हिंदी साहित्य में अमर कर दिया।शृंगार रस के ग्रंथों में बिहारी सतसई के समान ख्याति किसी को नहीं मिली। इस ग्रंथ की अनेक टीकाएं हुईं और अनेक कवियों ने इसके दोहों को आधार बना कर कवित्त, छप्पय, सवैया आदि छंदों की रचना की। बिहारी सतसई आज भी रसिक जनों का काव्य-हार बनी हुई है।

कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति के कारण सतसई के दोहे गागर में सागर भरे जाने की उक्ति चरितार्थ करते हैं। उनके विषय में ठीक ही कहा गया है –

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

अपने काव्य गुणों के कारण ही बिहारी महाकाव्य की रचना न करने पर भी महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनके संबंध में स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी की यह संपत्ति बड़ी सार्थक है –

यदि सूर सूर हैं, तुलसी शशी और उडगन केशवदास हैं तो बिहारी उस पीयूष वर्षी मेघ के समान हैं, जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आछन्न हो जाता है।

8

भूषण

भूषण (1613-1705) रीतिकाल के तीन प्रमुख कवियों में से एक हैं, अन्य दो कवि हैं बिहारी तथा केशव। रीति काल में जब सब कवि शृंगार रस में रचना कर रहे थे, वीर रस में प्रमुखता से रचना कर भूषण ने अपने को सबसे अलग साबित किया। 'भूषण' की उपाधि उन्हें चित्रकूट के राजा रूद्रसाह के पुत्र हृदयराम ने प्रदान की थी। ये मोरंग, कुमायूँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, रीवाँ, शिवाजी और छत्रसाल आदि के आश्रय में रहे, परन्तु इनके पसंदीदा नरेश शिवाजी और बुंदेला थे। कवि भूषण का परिवार आज कानपुर नगर के सजेती कस्बा में रहता है कवि भूषण तिवारी खानदान के थे जिनके वंशज शिवमोहन तिवारी आज सजेती कघ्स्बा में रहते में रहते है।

जीवन परिचय

कवि वर भूषण का जीवन विवरण वह जाती के तिवारी ब्राह्मण परिवार से थे उनके जन्म मृत्यु, परिवार आदि के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परंतु सजेती कस्बा में एक कवि भूषण जी का एक परिवार रहता है, जो इस बात का दावा करता है कि वो ही कवि भूषण के वंशज है व टिकवापुर गाँव छोड़ कर अग्रेजो के जमाने में उनके पूर्वज यहाँ बस गए आज भी उनकी जमीने टिकवापुर गाँव में पड़ती है कवि भूषण की बाद की पीढ़ी का सति माता का एक मंदिर टिकवापुर में बना है, जिसे यह परिवार अपनी

कुलदेवी मानता है व हर छोटे मोटे त्यौहार में उनकी पूजा अर्चना करता है भूषण का जन्म संवत 1670 तदनुसार ईस्वी 1613 में हुआ। उनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। वे चंडीसा राव थे-

भूषण का वास्तविक नाम घनश्याम था। शिवराज भूषण ग्रंथ के निम्न दोहे के अनुसार 'भूषण' उनकी उपाधि है, जो उन्हें चित्रकूट के राज हृदयराम के पुत्र रुद्रशाह ने दी थी -

कुल सुलंकि चित्रकूट-पति साहस सील-समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र।।

कहा जाता है कि भूषण कवि मतिराम और चिंतामणि के भाई थे। एक दिन भाभी के ताना देने पर उन्होंने घर छोड़ दिया और कई आश्रम में गए। यहां आश्रय प्राप्त करने के बाद शिवाजी के आश्रम में चले गए और अंत तक वहीं रहे।

पन्ना नरेश छत्रसाल से भी भूषण का संबंध रहा। वास्तव में भूषण केवल शिवाजी और छत्रसाल इन दो राजाओं के ही सच्चे प्रशंसक थे। उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है-

और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब।
साहू को सराहों कै सराहौं छत्रसाल को।।

संवत 1772 तदनुसार ईस्वी 1715 में भूषण परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ

विद्वानों ने इनके छह ग्रंथ माने हैं -शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, भूषण उल्लास, भूषण हजारा, दूषनोल्लासा। परन्तु इनमें शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवा बावनी ही उपलब्ध हैं। शिवराजभूषण में अलंकार, छत्रसाल दशक में छत्रसाल बुंदेला के पराक्रम, दानशीलता व शिवाबवनी में शिवाजी के गुणों का वर्णन किया गया है।

शिवराज भूषण एक विशालकाय ग्रन्थ है, जिसमें 385 पद्य हैं। शिवा बावनी में 52 कवितों में शिवाजी के शौर्य, पराक्रम आदि का ओजपूर्ण वर्णन है। छत्रसाल दशक में केवल दस कवितों के अन्दर बुन्देला वीर छत्रसाल के शौर्य का वर्णन किया गया है। इनकी सम्पूर्ण कविता वीर रस और ओज गुण से ओतप्रोत है, जिसके नायक शिवाजी हैं और खलनायक औरंगजेब। औरंगजेब के

प्रति उनका जातीय वैमनस्य न होकर शासक के रूप में उसकी अनीतियों के विरुद्ध है।

शिवराज भूषण से कुछ छन्द

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सुअंभ पर।
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है –1–
पौन बरिबाह पर, संभु रतिनाह पर।
ज्यों सहसबाह पर, राम द्विजराज है –2–
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर।
भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है –3–
तेजतम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर।
त्यों म्लेच्छ बंस पर, शेर सिवराज है –4–
ऊंचे घोर मंदिर के अन्दर रहन बारी ।।5।।
शिवा जो न होत तो सुनत हो सबकी ।।6।

भूषण की राष्ट्रीय चेतना

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीड़ित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वसान हैं। इनका समय औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब के समय से मुगल वैभव व सत्ता की पकड़ कमजोर होती जा रही थी। औरंगजेब की कटुरता व हिन्दुओं के प्रति नफरत ने उसे जनता से दूर कर दिया था। संकट की इस घड़ी में भूषण ने दो राष्ट्रीय पुरूषों – शिवाजी व छत्रसाल के माध्यम से पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना संचारित करने का प्रयास किया। भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। इन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग, उत्साह आदि का वर्णन किया है।

स्वदेशानुराग

भूषण का अपने देश के प्रति गहरा लगाँव था। उनकी दृष्टि पूरे देश पर थी। उन्होंने देखा कि औरंगजेब देवालयों को नष्ट कर रहा है तो उनका मन विद्रोह कर उठा। शिवाजी के माध्यम से उन्होंने अपनी वाणी प्रकट की –

देवल गिरावते फिरवाते निसान अली ऐसे समय राव–राने सबै गये लबकी।

गौरा गनपति आय, औरंग की देखि ताप अपने मुकाम सब मारि गये दबकी।।

संस्कृति अनुराग

भूषण ने संस्कृति का उपयोग हिंदुओं को खोया हुआ बल दिलाने के लिए किया। इन्होंने अनेक देवी-देवताओं के कार्यों का उल्लेख किया तथा उन महान् कार्यों की कोटि में शिवाजी के कार्यों की गणना की है। शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक रूप में अंकित किया गया है-

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यौ कर मैं।

राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ।।

साहित्य अनुराग

भूषण ने वेदशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। इन्होंने प्राचीन साहित्य के आधार पर ही अपने काव्य की रचना की उनका साहित्य प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है।

महापुरुषों के प्रति श्रद्धा

भूषण ने अतीत व वर्तमान के महापुरुषों व जननायकों के प्रति श्रृद्धा व्यक्त की है। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला या अन्य कोई पात्र सभी का उल्लेख केवल उन्हीं प्रसंगों में किया है, जो राष्ट्रीय भावना से संबंधित थे। जैसे –

रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज भूषण सकत को बरवानि यों बलन के।

उत्साह

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव होता है। भूषण के साहित्य में सजीवता, स्फूर्ति व उमंग का भाव है। मुगलों के साथ शिवाजी के संघर्ष का कवि उत्साहपूर्ण शैली में वर्णन किया है:-

दावा पातसाहन सों किन्हों सिवराज बीर,

जेर कीन्हीं देस हृदय बांध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यौ न मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे सेघ

निस्संदेह, भूषण का काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भावना के कवि हैं।

साहित्य में स्थान

भूषण का हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान हैं। वे वीर रस के अद्वितीय कवि थे। रीति कालीन कवियों में वे पहले कवि थे जिन्होंने हास-विलास की अपेक्षा राष्ट्रीय-भावना को प्रमुखता प्रदान की। उन्होंने अपने काव्य द्वारा तत्कालीन असहाय हिंदू समाज की वीरता का पाठ पढ़ाया और उसके समक्ष रक्षा के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। वे निस्संदेह राष्ट्र की अमर धरोहर हैं।

सारांश

जन्म संवत तथा स्थान - 1670
मृत्यु - संवत 1772।
ग्रंथ - शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक।
वर्ण्य विषय - शिवाजी तथा छत्रसाल के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन।
भाषा - ब्रज भाषा जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की बुंदेलखंडी और खड़ी बोली के शब्द मिले हुए हैं। व्याकरण की अशुद्धियां हैं और शब्द बिगड़ गए हैं।
शैली - वीर रस की ओजपूर्ण शैली।
छंद - कवित्त, सवैया।
रस - प्रधानता वीर, भयानक, वीभत्स, रौद्र औरशृंगार भी है।
अलंकार - प्रायः सभी अलंकार हैं।

काव्य में स्थान

आचार्यत्व की दृष्टि से भूषण को विशिष्ट स्थान नहीं प्रदान किया जा सकता पर कवित्व के विचार से उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता कवि- कीर्तिसम्बन्धी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है। वे तत्कालीन स्वातन्यसंग्राम के प्रतिनिधि कवि हैं। भूषण वीरकाव्य-धारा के जगमगाते रत्न हैं। कुछ काव्यगत उदाहरण इस प्रकार हैं -

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज हैं
डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी-सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धाक धाक,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की
सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भयो,
स्याह मुख नौरँग, सिपाह मुख पियरे।
दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुबे की,
बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवाल को।
मठ विस्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत हैं साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,

धाक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को
चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है।
बिलखि बदन बिलखत बिजैपुर पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है
थर थर काँपत कुतुब साहि गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती धारकति है
जिहि फन फूतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो
कीन्हो जिहि पान पयपान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलद्दल निगलिगो।

9

भिखारीदास

कवि और आचार्य भिखारीदास का जन्म प्रतापगढ़ के निकट टेंउगा नामक स्थान में सन् 1721 ई. में हुआ था। इनकी मृत्यु बिहार में आरा के निकट भभुआ नामक स्थान पर हुई। भिखारीदास द्वारा लिखित सात कृतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं- रस सारांश, काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, छन्दोर्णव पिंगल, अमरकोश या शब्दनाम प्रकाश, विष्णु पुराण भाषा और सतरंज शासिका हैं।

इन्होंने अपना वंश परिचय दिया है। इनके पिता कृपालदास, पितामह वीरभानु, प्रपितामह राय रामदास और वृद्ध प्रपितामह राय नरोत्ताम दास थे।

भिखारी दास जी के पुत्र अवधेश लाल और पौत्र गौरीशंकर थे जिनके अपुत्र मर जाने से वंश परंपरा खंडित हो गई।

भिखारी दास जी के निम्न ग्रंथों का पता लगा है -

रससारांश संवत - रससारांश 1799

छंदार्णव पिंगल - छंदार्णव पिंगल संवत 179

काव्यनिर्णय - काव्यनिर्णय संवत 1803

शृंगार निर्णय -शृंगारनिर्णय संवत 1807

नामप्रकाश कोश - नामप्रकाश कोश संवत 1795

विष्णुपुराण भाषा - विष्णुपुराण भाषा दोहे चौपाई में

छंद प्रकाश,
शतरंजशतिका,
अमरप्रकाश –संस्कृत अमरकोष भाषा पद्य में
कढ़ि कै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
लोगन को देखि दास आनंद पगति है।
दौरि दौरि जहीं तहीं लाल करि डारति है,
अंक लगि कंठ लगिबे को उमगति है
चमक झमक वारी, ठमक जमक वारी,
रमक तमक वारी जाहिर जगति है।
राम! असि रावरे की रन में नरन में,
निलज बनिता सी होरी खेलन लगति है
अब तो बिहारी के वे बानक गए री, तेरी
तन दूति केसर को नैन कसमीर भो।
श्रौन तुव बानी स्वाति बूँदन के चातक भे,
साँसन को भरिबो द्रुपदजा को चीर भो
हिय को हरष मरु धारनि को नीर भो, री!
जियरो मनोभव सरन को तुनीर भो।
एरी! बेगि करि कैं मिलापु थिर थापु, न तौ
आपु अब चहत अतनु को सरीर भो
अंखियाँ हमारी दईमारी सुधि बुधि हारीं,
मोहूँ तें जु न्यारी दास रहै सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौंपत सयाने, कौन
लोक ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में
प्रेम पगि रही, महामोह में उमगि रहीं,
ठीक ठगि रहीं, लगि रहीं बनमाल में।
लाज को अंचौ कै, कुलधरम पचौ कै, वृथा
बंधान सँचौ कै भई मगन गोपाल में
"–आचार्य भिखारीदास

कविता काल

'काव्यनिर्णय' में भिखारी दास जी ने प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजा पृथ्वीसिंह के भाई बाबू हिंदूपतिसिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है। राजा

पृथ्वीपति संवत 1791 में गद्दी पर बैठे थे और 1807 में दिल्ली के वजीर सफदरजंग द्वारा छल से मारे गए थे। ऐसा जान पड़ता है कि संवत 1807 के बाद इन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा अतः इनका कविता काल संवत 1785 से लेकर संवत 1807 तक माना जा सकता है।

काव्यांगों का निरूपण

काव्यांगों के निरूपण में भिखारी दास को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है क्योंकि इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष शब्दशक्ति आदि सब विषयों का औरों से विस्तृत प्रतिपादन किया है। इनकी विषय प्रतिपादन शैली उत्तम है और आलोचनशक्ति भी इनमें कुछ पाई जाती है, जैसे हिन्दी काव्यक्षेत्र में इन्हें परकीया के प्रेम की प्रचुरता दिखाई पड़ी, जो रस की दृष्टि से रसाभास के अंतर्गत आता है। बहुत से स्थलों पर तो राधाकृष्ण का नाम आने से देवकाव्य का आरोप हो जाता है और दोष का कुछ परिहार हो जाता है, पर सर्वत्र ऐसा नहीं होता। इससे भिखारी दास ने स्वकीया का लक्षण ही कुछ अधिक व्यापक करना चाहा और कहा,

श्रीमाननि के भौन में भोग्य भामिनी–श्रीमाननि के भौन में भोग्य भामिनी और।

तिनहूँ को सुकियाह में गनैं सुकवि सिरमौर

साहित्यदर्पण में नायिकाओं के स्वभावज अलंकार 18 कहे गए हैं – लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित्ता, कुट्टमित्ता, विभ्रम, ललित, विहृत, मद, तपन, मौग्धय, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि। इनमें से अंतिम आठ को लेकर भिखारी दास ने भाषा में प्रचलित दस हावों में जोड़ दिया। इन्हें जानने के लिए हिन्दी में संस्कृत के मुख्य सिद्धांत ग्रंथों के सब विषयों का यथावत समावेश कर साहित्यशास्त्र का सम्यक् अध्ययन करना होगा।

भिखारी दास का आचार्यत्व

देव की भाँति भिखारी दास का स्थान है। यद्यपि इस क्षेत्र में औरों को देखते भिखारी दास ने अधिक काम किया है, पर सच्चे आचार्य का पूरा रूप

इन्हें भी प्राप्त नहीं हो पाया है। परिस्थिति से ये भी लाचार थे। इनके लक्षण भी व्याख्या के बिना अपर्याप्त और कहीं कहीं भ्रामक हैं और उदाहरण भी कुछ स्थलों पर अशुद्ध हैं। जैसे - उपादान लक्षणा, इसका लक्षण भी अशुद्ध है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है। अत: भिखारी दास भी औरों के समान वस्तुत: कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं।

परिमार्जित भाषा

भिखारी दास ने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है। श्रृंगार ही उस समय का मुख्य विषय था। देव ने भिन्न-भिन्न देशों और जातियों की स्त्रियों के वर्णन के लिए 'जातिविलास' लिखा, जिसमें नाइन, धोबिन, सब हैं, पर भिखारी दास ने रसाभाव या मर्यादा का ध्यान रख इनको आलंबन के रूप में न रखकर दूती के रूप में रखा है। इनके 'रससारांश' में नाइन, नटिनी, धोबिन, कुम्हारिन, बरइन, सब प्रकार की दूतियाँ हैं।

शैली

भिखारी दास में देव की अपेक्षा अधिक रसविवेक था। इनका ' श्रृंगारनिर्णय' अपने ढंग का अनूठा काव्य है। उदाहरण मनोहर और सरस है। भाषा में शब्दाडंबर नहीं है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिए व्याकुल हुए हैं। इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भावपक्ष में **रंजनकारिणी** है। विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त इन्होंने नीति की सूक्तियाँ भी बहुत-सी कही हैं जिनमें उक्ति वैचित्रय अपेक्षित होता है। देव की सी ऊँची आकांक्षा या कल्पना जिस प्रकार इनमें कम पाई जाती है उसी प्रकार उनकी सी असफलता भी कहीं नहीं मिलती। जिस बात को ये जिस ढंग से, चाहे वह ढंग बहुत विलक्षण न हो, कहना चाहते थे उस बात को उस ढंग से कहने की पूरी सामर्थ्य इनमें थी।

वाही घरी तें न सान रहै, न गुमान रहै, न रहै सुघराई।
दास न लाज को साज रहै न रहै तनकौ घरकाज की घाई
ह्याँ दिखसाधा निवारे रहौ तब ही लौ भटू सब भाँति भलाई।
देखत कान्हैं न चेत रहै, नहिं चित्त रहै, न रहै चतुराई
नैनन को तरसैए कहाँ लौं, कहाँ लौ हियो बिरहागि मैं तैए।
एक घरी न कहूँ कल पैए, कहाँ लगि प्रानन को कलपैए?
आवै यही अब जी में बिचार सखी चलि सौति हुँ, कै घर जैए।

मान घटै ते कहा घटि है जु पै प्रानपियारे को देखन पैए
ऊधो! तहाँई चलौ लै हमें जहँ कूबरि कान्ह बसैं एक ठौरी।
देखिए दास अघाय अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी
कूबरी सों कछु पाइए मंत्र, लगाइए कान्ह सों प्रीति की डोरी।
कूबरिभक्ति बढ़ाइए बंदि, चढ़ाइए चंदन बंदन रोरी
"

–आचार्य भिखारीदास

10

पद्माकर

पद्माकर

रीति काल के ब्रजभाषा कवियों में पद्माकर (1753-1833) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में अंतिम चरण के सुप्रसिद्ध और विशेष सम्मानित कवि थे। मूलतः हिन्दीभाषी न होते हुए भी पद्माकर जैसे आन्ध्र के अनगिनत तैलंग-ब्राह्मणों ने हिन्दी और संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में जितना योगदान दिया है वैसा अकादमिक उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

जन्म और कुल-परिचय

मूलतः तेलगु भाषी इनके पूर्वज दक्षिण के आत्रेय, आर्चनानस, शबास्य-त्रिप्रवरान्वित, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा के यशस्वी तैलंग ब्राह्मण थे। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट सागर में बस गए थे। यहीं पद्माकर जी का जन्म सन् 1753 में हुआ। परन्तु 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और 'बाँदा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' के अलावा कुछ विद्वान मध्यप्रदेश के सागर की बजाय उत्तर प्रदेश के नगर बांदा को पद्माकर की जन्मभूमि कहते हैं- शायद इसलिए भी, क्योंकि बहुत से वर्ष उन्होंने बांदा में ही बिताए।

पद्माकर कवीश्वर एक प्रतिभासम्पन्न जन्मजात कवि थे। इन्हें आशु-कवित्त-शक्ति अपने पहले के कवियों और संस्कृत-विद्वानों की सुदीर्घ वंश-परम्परा से ही प्राप्त थी। उनके पूरे कुटुंब का वातावरण ही कवितामय था। उनके पिता के साथ-साथ उनके कुल के अन्य लोग भी बहुत समादृत कवि थे, अतः उनके कुल/वंश का नाम ही 'कवीश्वर' पड़ गया था। मात्र 9 वर्ष की उम्र में ही पद्माकर उत्कृष्ट कविता लिखने लगे थे।

ग्रन्थ-रचना

अजयगढ़ के गुसाईं अनूप गिरी (हिम्मत बहादुर) की काव्यात्मक-प्रशंसा में उन्होंने 'हिम्मत-बहादुर-विरूदावली', जयपुर नरेश प्रतापसिंह के सम्मान में 'प्रतापसिंह-विरूदाली' और सवाई जगत सिंह के लिए 'जगत-विनोद', ग्वालियर के शासक दौलतराव सिंधिया के सम्मान में आलीजाप्रकाश, जयपुर नरेश ईश्वरी सिंह की प्रशस्ति में 'ईश्वर-पचीसी' जैसे सुप्रसिद्ध कविता-ग्रंथों की रचना की। यों पद्माकर जी रचित ग्रंथों में सबसे जाने माने संग्रहों में - हिम्मतबहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, रामरसायन (अनुवाद), गंगालहरी, आलीजाप्रकाश, प्रतापसिंह विरूदावली, प्रबोध पचासा, ईश्वर-पचीसी, यमुनालहरी, प्रतापसिंह-सफरनामा, भग्वत्पंचाशिका, राजनीति, कलि-पचीसी, रायसा, हितोपदेश भाषा (अनुवाद), अश्वमेध आदि प्रमुख हैं।

काव्य-सौंदर्य

पद्माकर ने सजीव मूर्त विधान करने वाली कल्पना के माध्यम से शौर्य, श्रृंगार, प्रेम, भक्ति, राजदरबार की सम्पन्न गतिविधियों, मेलो-उत्सवों, युद्धों और प्रकृति-सौंदर्य का मार्मिक चित्रण किया है। जगह-जगह लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा वे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावानुभूतियों को सहज ही मूर्तिमान कर देते हैं। उनके ऋतु-वर्णन में भी इसी जीवंतता और चित्रत्मकता के दर्शन होते हैं। उनके आलंकारिक वर्णन का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी सघन रूप से पड़ा। पद्माकर की भाषा सरस, काव्यमय, सुव्यवस्थित और प्रवाहपूर्ण है। अनुप्रास द्वारा ध्वनिचित्र खड़ा करने में वे सिद्धहस्त हैं। काव्य-गुणों का पूरा निर्वाह उनके छंदों में हुआ है। छंदानुशासन और काव्य-प्रवाह की दृष्टि से दोहा, सवैया और कवित्त पर जैसा असाधारण अधिकार पद्माकर का था, वैसा अन्य किसी मध्यकालीन कवि की रचनाओं में दिखलाई नहीं पड़ता।

व्रजभाषा के अलावा संस्कृत और प्राकृत पर भी पद्माकर का अद्भुत अधिकार था- उनके अप्रकाशित संस्कृत-लेखन पर गहन शोध-कार्य अपेक्षित है। डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय औरंगाबाद के हिन्दी/संस्कृत विभाग ने कभी इसी दिशा में कुछ शोध-परियोजनाएँ बनाई थीं।

निधन

कहा जाता है- जीवन के अंतिम समय में उन्हें कुष्ठरोग हो गया था, जिस से वह गंगाजल के ओषधिमूलक प्रयोग के बाद अंततः स्वस्थ भी हो गए। जगन्नाथ पंडितराज की तरह गंगा की स्तुति में अपने जीवन-काल की अंतिम काव्य-रचना "गंगा-लहरी" लिख कर कानपुर में गंगा-किनारे उनका 80 वर्ष की आयु में सन् 1833 में निधन हुआ। सागर में तालाब घाट पर पद्माकर की मूर्ति स्थापित है।

जन्म-बचपन

राज कवि अमीर खुसरो का जन्म सन् 1253 ई. में एटा (उत्तर प्रदेश) के पटियाली नामक कस्बे में गंगा किनारे हुआ था। अमीर खुसरो मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफद्दीन के पुत्र हैं। हिन्दी खड़ी बोली के पहले लोकप्रिय कवि अमीर खुसरो ने कई गजल, खयाल, कव्वाली, रुबाई, तराना की रचना की हैं। लाचन जाति के तुर्क चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266-1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रूप में भारत में आ बसे थे। अमीर खुसरो की माँ दौलत नाज हिन्दू (राजपूत) थीं। ये दिल्ली के एक रईस अमी इमादुल्मुल्क की पुत्री थीं। ये बादशाह बलबन के युद्ध मन्त्री थे। ये राजनीतिक दवाब के कारण नए-नए मुसलमान बने थे। इस्लाम धर्म ग्रहण करने के बावजूद इनके घर में सारे रीति-रिवाज हिन्दुओं के थे। खुसरो के ननिहाल में गाने-बजाने और संगीत का माहौल था। खुसरो के नाना को पान खाने का बेहद शौकघ था। इस पर बाद में खुसरो ने 'तम्बोला' नामक एक मसनवी भी लिखी। इस मिले-जुले घराने एवं दो परम्पराओं के मेल का असर किशोर खुसरो पर पड़ा। वे जीवन में कुछ अलग हट कर करना चाहते थे और वाकई ऐसा हुआ भी। खुसरो के श्याम वर्ण रईस नाना इमादुल्मुल्क और पिता अमीर सैफुद्दीन दोनों ही चिश्तिया सूफी सम्प्रदाय के महान सूफी साधक एवं संत हजरत निजामुद्दीन

औलिया उर्फ सुल्तानुल मशायख के भक्त अथवा मुरीद थे। उनके समस्त परिवार ने औलिया साहब से धर्मदीक्षा ली थी। उस समय खुसरो केवल सात वर्ष के थे। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया, किन्तु खुसरो की शिक्षा-दीक्षा में बाधा नहीं आयी। अपने समय के दर्शन तथा विज्ञान में उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की, किन्तु उनकी प्रतिभा बाल्यावस्था में ही काव्योन्मुख थी। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया और 20 वर्ष के होते-होते वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

व्यावहारिक बुद्धि

जन्मजात कवि होते हुए भी खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की। जहाँ एक ओर उनमें एक कलाकार की उच्च कल्पनाशीलता थी, वहीं दूसरी ओर वे अपने समय के सामाजिक जीवन के उपयुक्त कूटनीतिक व्यवहार-कुशलता में भी दक्ष थे। उस समय बृद्धिजीवी कलाकारों के लिए आजीविका का सबसे उत्तम साधन राज्याश्रय ही था। खुसरो ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन राज्याश्रय में बिताया। उन्होंने गुलाम, खलिजी और तुगलक-तीन अफगान राज-वंशों तथा 11 सुल्तानों का उत्थान-पतन अपनी आँखों से देखा। आश्चर्य यह है कि निरन्तर राजदरबार में रहने पर भी खुसरो ने कभी भी उन राजनीतिक षड्यन्त्रों में किंचिन्मात्र भाग नहीं लिया जो प्रत्येक उत्तराधिकार के समय अनिवार्य रूप से होते थे। राजनीतिक दाँव-पेंच से अपने को सदैव अनासक्त रखते हुए खुसरो निरन्तर एक कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। खुसरो की व्यावहारिक बुद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि वे जिस आश्रयदाता के कृपापात्र और सम्मानभाजक रहे, उसके हत्यारे उत्तराधिकारी ने भी उन्हें उसी प्रकार आदर और सम्मान प्रदान किया।

राज्याश्रय

सबसे पहले सन् 1270 ई. में खुसरो को सम्राट् गयासुद्दीन बलवन के भतीजे, कड़ा (इलाहाबाद) के हाकिम अलाउद्दीन मुहम्मद कुलिश खघँ (मलिक छज्जू) का राज्याश्रय प्राप्त हुआ। एक बार बलवन के द्वितीय पुत्र नसीरूद्दीन बुगरा खघँ की प्रशंसा में कसीदा लिखने के कारण मलिक छज्जू

उनसे अप्रसन्न हो गया और खुसरो को बुगरा खघँ का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। जब बुगरा खाँ लखनौती का हाकिम नियुक्त हुआ तो खुसरो भी उसके साथ चले गये। किन्तु वे पूर्वी प्रदेश के वातावरण में अधिक दिन नहीं रह सके और बलवन के ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मुहम्मद का निमन्त्रण पाकर दिल्ली लौट आये। खुसरो का यही आश्रयदाता सर्वाधिक सुसंस्कृत और कला-प्रेमी था। सुल्तान मुहम्मद के साथ उन्हें मुल्तान भी जाना पड़ा और मुगलों के साथ उसके युद्ध में भी सम्मिलित होना पड़ा।

बन्दी खुसरो

इस युद्ध में सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु हो गयी और खुसरो बन्दी बना लिये गये। खुसरो ने बड़े साहस और कुशलता के साथ बन्दी-जीवन से मुक्ति प्राप्त की। परन्तु इस घटना के परिणामस्वरूप खुसरो ने जो मर्सिया लिखा वह अत्यन्त हृदयद्रावक और प्रभावशाली है। कुछ कुछ दिनों तक वे अपनी माँ के पास पटियाली तथा अवध के एक हाकिम अमीर अली के यहाँ रहे। परन्तु शीघ्र ही वे दिल्ली लौट आये।

रचनाएँ

दिल्ली में पुनः उन्हें मुईजुद्दीन कैकबाद के दरबार में राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ। यहाँ उन्होंने सन् 1289 ई. में 'मसनवी किरानुससादैन' की रचना की। गुलाम वंश के पतन के बाद जलालुद्दीन खलिजी दिल्ली का सुल्तान हुआ। उसने खुसरो को अमीर की उपाधि से विभूषित किया। खुसरो ने जलालुद्दीन की प्रशंसा में 'मिफ्तोलफतह' नामक ग्रन्थ की रचना की। जलालुद्दीन के हत्यारे उसके भतीजे अलाउद्दीन ने भी सुल्तान होने पर अमीर खुसरो को उसी प्रकार सम्मानित किया और उन्हें राजकवि की उपाधि प्रदान की अलाउद्दीन की प्रशंसा में खुसरो ने जो रचनाएँ की वे अभूतपूर्व थीं। खुसरो की अधिकांश रचनाएँ अलाउद्दीन के राजकाल की ही है। 1298 से 1301 ई. की अवधि में उन्होंने पाँच रोमाण्टिक मसनवियाँ-

1. 'मल्लोल अनवर'
2. 'शिरीन खुसरो'
3. 'मजनू लैला'

4. 'आईने-ए-सिकन्दरी'
5. 'हश्त विहिश्त'

ये पंच-गंज नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मसनवियाँ खुसरो ने अपने धर्म-गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया को समर्पित कीं तथा उन्हें सुल्तान अलाउद्दीन को भेंट कर दिया। पद्य के अतिरिक्त खुसरो ने दो गद्य-ग्रन्थों की भी रचना की-

1. 'खजाइनुल फतह', जिसमें अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन है
2. 'एजाजयेखुसरवी', जो अलंकारग्रन्थ हैं। अलाउद्दीन के शासन के अन्तिम दिनों में खुसरो ने देवलरानी खज्रिखाँ नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक मसनवी लिखी।

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी उसके छोटे पुत्र कुतुबद्दीन मुबारकशाह के दरबार में भी खुसरो ससम्मान राजकवि के रूप में बने रहे, यद्यपि मुबारकशाह खुसरो के गुरु शेख निजामुद्दीन से शत्रुता रखता था। इस काल में खुसरो ने नूहसिपहर नाम ग्रन्थ की रचना की जिसमें मुबारकशाह के राज्य-कला की मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन है।

निजामुद्दीन औलिया

खुसरो की अन्तिम ऐतिहासिक मसनवी 'तुगलक' नामक है, जो उन्होंने गयासुद्दीन तुगलक के राज्य-काल में लिखी और जिसे उन्होंने उसी सुल्तान को समर्पित किया। सुल्तान के साथ खुसरो बंगाल के आक्रमण में भी सम्मिलित थे। उनकी अनुपस्थिति में ही दिल्ली में उनके गुरु शेख निजामुद्दीन मृत्यु हो गयी। इस शोक को अमीर खुसरो सहन नहीं कर सके और दिल्ली लौटने पर 6 मास के भीतर ही सनृ 1325 ई. में खुसरो ने भी अपनी इहलीला समाप्त कर दी। खुसरो की समाधि शेख की समाधि के पास ही बनायी गयी।

शेख निजामुद्दीन औलिया अफगान-युग के महान सूफी सन्त थे। अमीर खुसरो आठ वर्ष की अवस्था से ही उनके शिष्य हो गये थे और सम्भवत: गुरु की प्रेरणा से ही उन्होंने काव्य-साधना प्रारम्भ की। यह गुरु का ही प्रभाव था कि राज-दरबार के वैभव के बीच रहते हुए भी खुसरो हृदय से रहस्यवादी सूफी सन्त बन गये। खुसरो ने अपने गुरु का मुक्त कंठ से यशोगान किया है और अपनी मसनवियों में उन्हें सम्राट से पहले स्मरण किया है।

उन्होंने स्वयं कहा है-मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो। मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा खुसरो को

हिन्दी खड़ी बोली का पहला लोकप्रिय कवि माना जाता है। एक बार की बात है। तब खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के दिल्ली दरबार में दरबारी थे। तुगलक खुसरो को तो चाहता था मगर हजरत निजामुद्दीन के नाम तक से चिढता था। खुसरो को तुगलक की यही बात नागवार गुजरती थी। मगर वह क्या कर सकता था, बादशाह का मिजाज। बादशाह एक बार कहीं बाहर से दिल्ली लौट रहा था तभी चिढकर उसने खुसरो से कहा कि हजरत निजामुद्दीन को पहले ही आगे जा कर यह संदेश दे दें कि बादशाह के दिल्ली पहुँचने से पहले ही वे दिल्ली छोड़ कर चले जाएं।। खुसरो को बडी तकलीफ हुई, पर अपने सन्त को यह संदेश कहा और पूछा अब क्या होगा?

कुछ नहीं खुसरो! तुम घबराओ मत। हनूज दिल्ली दूरअस्त–यानि अभी बहुत दिल्ली दूर है। सचमुच बादशाह के लिये दिल्ली बहुत दूर हो गई। रास्ते में ही एक पड़ाव के समय वह जिस खेमे में ठहरा था, भयंकर अंधड़ से वह टूट–कर गिर गया और फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। तभी से यह कहावत 'अभी दिल्ली दूर है' पहले खुसरो की शायरी में आई फिर हिन्दी में प्रचलित हो गई। अमीर खुसरो किसी काम से दिल्ली से बाहर कहीं गए हुए थे वहीं उन्हें अपने ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के निधन का समाचार मिला। समाचार क्या था? खुसरो की दुनिया लुटने की खबर थी। वे सन्नीपात की अवस्था में दिल्ली पहुँचे, धूल–धूसरित खघनकघह के द्वार पर खडे हो गए और साहस न कर सके अपने पीर की मृत देह को देखने का। आखरिकार जब उन्होंने शाम के ढलते समय पर उनकी मृत देह देखी तो उनके पैरों पर सर पटक–पटक कर मूर्छित हो गए। और उसी बेसुध हाल में उनके होंठों से निकला,।

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने सांझ भई चहुं देस।।

अपने प्रिय के वियोग में खुसरो ने संसार के मोहजाल काट फेंके। धन–सम्पत्ति दान कर, काले वस्त्र धारण कर अपने पीर की समाधि पर जा बैठे–कभी न उठने का दृढ निश्चय करके। और वहीं बैठ कर प्राण विसर्जन करने लगे। कुछ दिन बाद ही पूरी तरह विसर्जित होकर खुसरो के प्राण अपने प्रिय से जा मिले। पीर की वसीयत के अनुसार अमीर खुसरो की समाधि भी अपने प्रिय की समाधि के पास ही बना दी गई।

हिन्दी की तूती

अमीर खुसरो मुख्य रूप से फारसी के कवि हैं। फारसी भाषा पर उनका अप्रतिम अधिकार था। उनकी गणना महाकवि फिरदौसी, शेख सादिक और निजामी फारस के महाकवियों के साथ होती है। फारसी काव्य के लालित्य और मार्दव के कारण ही अमीर खुसरो को 'हिन्दी की तूती' कहा जाता है। खुसरो का फारसी काव्य चार वर्गो में विभक्त किया जा सकता है-

ऐतिहासिक मसनवी जिसमें किरानुससादैन, मिफतोलफतह, देवलरानी खिज्रखाँ, नूहसिपहर और तुगलकनामा नामकी रचनाएँ आती हैं,

रोमाण्टिक मसनवी-जिसमें मतलऊ लअनवार, शिरीन खुसरी, आईन-ए-सिकन्दरी, मजनू-लैला और हश्त विहश्त गिनी जाती है,

दीवान-जिसमें तुहफ तुम सिगहर, वास्तुलहयात आदि ग्रन्थ आते हैं,

गद्य रचनाएँ- 'एजाजयेखुसरवी' और 'खजाइनुलफतह तथा मिश्रित'-जिसमें वेदऊलअजाइब', 'मसनवी शहरअसुब', 'चिश्तान' और 'खघलितबारी' नाम की रचनाएँ परिगणित हैं।

यद्यपि खुसरो की महत्ता उनके फारसी काव्य पर आश्रित है, परन्तु उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी हिन्दवी की रचनाएँ ही हैं। हिन्दवी में काव्य-रचना करनेवालों में अमीर खुसरो का नाम सर्वप्रमुख है। अरबी, फारसी के साथ-साथ अमीर खुसरो को अपने हिन्दवी ज्ञान पर भी गर्व था। उन्होंने स्वयं कहा है- 'मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो! मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा। 'अमीर खुसरो ने कुछ रचनाएँ हिन्दी या हिन्दवी में भी की थीं, इसका साक्ष्य स्वयं उनके इस कथन में प्राप्त होता है-' जुजवे चन्द नज्में हिन्दी नजरे दोस्तां करदाँ अस्त।' उनके नाम से हिन्दी में पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने और कुछ गजलें प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनका फारस-हिन्दी कोश खालिकबारी भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

अमीर खुसरो की हिन्दी कविता

दुर्भाग्य है कि अमीर खुसरो की हिन्दवी रचनाएँ लिखित रूप में प्राप्त नहीं होतीं। लोकमुख के माध्यम से चली आ रहीं उनकी रचनाओं की भाषा में निरन्तर परिवर्तन होता रहा होगा और आज वह जिस रूप में प्राप्त होती है वह उसका

आधुनिक रूप है। फिर भी हम नि:सन्देह यह विश्वास कर सकते हैं कि खुसरो ने अपने समय की खड़ी बोली अर्थात् हिन्दवी में भी अपनी पहेलियाँ, मुकरियाँ आदि रची होंगी। कुछ लोगों को अमीर खुसरो की हिन्दी कविता की प्रामाणिकता में सन्देह होता है। स्व. प्रोफेसर शेरानी तथा कुछ अन्य आलोचक विद्वान् खालिकबोरी को भी प्रसिद्ध अमीर खुसरो की रचना नहीं मानते। परन्तु खुसरो की हिन्दी कविता के सम्बन्ध में इतनी प्रबल लोकपरम्परा है कि उसपर अविश्वास नहीं किया जा सकता यह परम्परा बहुत पुरानी है। 'अरफतुलआसिती' के लेखक तकी ओहदीजो 1606 ई. में जहाँगीर के दरबार में आये थे खुसरो की हिन्दी कविता का जिक्र करते हैं। मीरत की 'मीर' अपने 'निकातुसस्वरा' में लिखते हैं कि उनके समय तक खुसरो के हिन्दी गीत अति लोकप्रिय थे।' इस सम्बन्ध में सन्देह को स्थान नहीं है कि अमीर खुसरो ने हिन्दवी में रचना की थी। यह आवश्य है कि उसका रूप समय के प्रवाह में बदलता आया हो। आवश्यकता यह है कि खुसरो ने हिन्दवी में रचना की थी। यह अवश्य है कि उसका रूप समय के प्रवाहमें बदलता आया हो। आवश्यकता यह है कि खुसरो की हिन्दी-कविता का यथासम्भव वैज्ञानिक सम्पादन करके उसके प्राचीनतम रूप को प्राप्त करने का यत्न किया जाय। काव्य की दृष्टि से भले ही उसमें उत्कृष्टता न हो, सांस्कृतिक और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उसका मूल्य निस्सन्देह बहुत अधिक है।

कुछ रचनाएँ

जिहाल-ए मिस्कीं मकुन तगाफुल,
दुराये नैना बनाये बतियां।
कि ताब-ए-हिजरां नदारम जान,
न लेहो काहे लगाये छतियाँ ।।
शबां-ए-हिजरां दरज चूं जुल्फ
वा रोज-ए-वस्लत चो उम्र कोताह,
सखि पिया को जो मैं न देखूं
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां ।।
यकायक अज दिल, दो चश्म-ए-जादू
ब सद फरेबम बाबुर्द तस्कीं,
किसे पडी है, जो जा सुनावे

पियारे पी को हमारी बतियाँ ।।
चो शमा सोजान, चो जर्रा हैरान
हमेशा गिरयान, बे इश्क आं मेह।
न नींद नैना, ना अंग चौना
ना आप आवें, न भेजें पतियाँ ।।
बहक्क-ए-रोजे, विसाल-ए-दिलबर
कि दाद मारा, गरीब खुसरौ।
सपेट मन के, वराये राखूं
जो जाये पांव, पिया के खटियाँ ।।

❐❐❐